नवयुग-ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प

लाला लाजपतराय जी

की

आत्म-कथा

सम्पादक—

भीमसेन विद्यालङ्कार

नवयुग ग्रन्थमाला का द्वितीय पुस्तक—

स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी

की

आत्मकथा

प्रथम-भाग

सम्पादक—

भीमसेन विद्यालंकार

नवयुग प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर मे मुद्रित

१ पौष १९८९ विक्रमी तदनुसार १५ दिसम्बर १९३२ ई०

प्रथम संस्करण] [मूल्य १॥)

विषय सूची

चित्र सूची

सम्पादक के दो शब्द

स्वर्गीय पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के महत्त्व-पूर्ण जीवन का रहस्य फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् रोमान्रोलॉन् ने निम्न लिखित शब्दों में प्रकट किया है।

I have always thought that if Dayanand Sarswati had lived in our time he would have thrilled with joy at recognising in Lajpat Rai the highest type of the Arya Samaj, the warrior, the knight "without fear and without reproach" who devotes his life to the defence of Justice. I read again the lines of Dayanand :—

To strive to combat, to humiliate, to destroy the wicked, though they be powerful, the sovereigns of the whole of earth. To strive constantly to under mine the power of the unjust and to strengthen that of the just—though oneself must undergo terrible suffering even death. Let no attempt be made to avert it.

Romain Rolland.

मैं समझता हूं कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती आज हमारे बीच में जीवित होते तो वह लाला लाजपतराय

के जीवन में आर्यसमाज के जीवित जागृत चित्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते। लाला लाजपतराय वीर थे। उन्होंने न्याय और सत्य की रक्षा में अपना जीवन अर्पण किया हुआ था। मैं फिर ऋषि दयानन्द का निम्नलिखित वाक्य पढ़ता हूं। इसमें आर्यसमाज के मनुष्यधर्म का वर्णन किया गया है।

"मनुष्य उसीको कहना—जो अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण-रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण, और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात जहां तक होसके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी चले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

रामानगेलॉन

आत्मकथा के इस प्रथम भाग में आर्यसमाज के आन्दोलन का विशेष विवरण है। लाला लाजपतराय जी ने अपने जीवन के सामने उपरिलिखित आदर्श रख कर आर्यसमाज की सेवा की थी।

इस प्रथम भाग का पारायण जनता के हृदय में इस भाव को जागृत करे, ऐसी हार्दिक इच्छा है।

भीमसेन विद्यालंकार

प्रकाशक के दो शब्द

स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी की आत्मकथा के प्रथम भाग को पुस्तकाकार में प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता होती है। भारतवर्ष में इस प्रकार की आत्मकथाओं के लिखने की परिपाटी नई है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस प्रकार की आत्मकथाओं का सर्वथा अभाव है। सम्भवतः इसका कारण भारतीय विद्वानों तथा नेताओं की दार्शनिक मनोवृत्ति हो। वह अपने अस्तित्व को लुप्त कर लोक सेवा करना ही उचित समझते थे।

परन्तु वर्तमान युग में विशेषतः युरोप में ऐसी आत्मकथाओं के लिखने की परिपाटी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित है। भारतवर्ष के वर्तमान काल में श्री० सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, महात्मागांधी जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा लाला लाजपतराय जी द्वारा लिखी गई आत्मकथा विशेष आकर्षण रखती हैं। महात्मागांधी जी तथा स्वामी श्रद्धनान्द जी की आत्मकथाएँ पुस्तकाकार में हिन्दी जानने वाली जनता के सामने रखी जा चुकी हैं। स्वर्गीय लालाजी की आत्मकथा लेखमाला के रूप में, "पंजाब केसरी" में प्रकाशित होती रही है। जनता की प्रवल इच्छा थी कि यह लेखमाला पुस्तकाकार में प्रकाशित हो। इसी इच्छा पूर्ति के लिये ही आत्मकथा पुस्तकाकार में प्रकाशित की गई है।

यह आत्मकथा दो भागों में समाप्त होगी।

प्रथम भाग में स्वर्गीय लालाजी के पारिवारिक जीवन तथा आर्य सामाजिक जीवन का विशेष रूप से वर्णन किया गया।

इस प्रथम भाग को प्रकाशित करते हुए हम स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी द्वारा संस्थापित लोकसेवक मंडल के संचालकों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं कि उन्हों ने उदारता पूर्वक हमें आत्मकथा को पुस्तकाकार में प्रकाशित करने की अनुमति दी है।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी प्रेमी जनता इस प्रथम को अपना कर हमारे उत्साह को बढ़ाएगी।

आत्मकथा के द्वितीय भाग में निम्न लिखित विशेष विवरण होंगे।

(१) देश निर्वासन की कथा।
(२) अमरीका में पाँच साल।
(३) स्वर्गीय लालाजी द्वारा संचालित हिन्दू संगठन अछूतोद्धार तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के वर्णन।
(४) स्वर्गीय लालाजी के ऐतिहासिक भाषणों का संग्रह।
(५) स्वर्गीय लालाजी के प्रकाशित लेखों का संग्रह।
(६) लालाजी की चिट्ठीपत्री।

प्रकाशक—

मैनेजर, नवयुग ग्रन्थमाला।

मोहनलाल रोड, लाहौर।
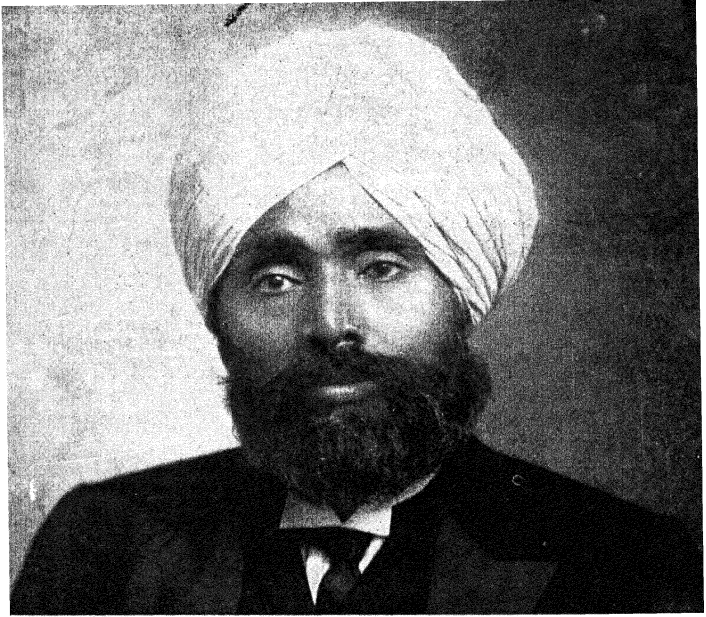
ला० लाजपतराय जी १९०५ ई० में

(१)

प्रस्तावना

सबसे पहले अपने जीवन की घटनाओं को लिखने का विचार मेरे दिल में १६०७ ई० में उस समय पैदा हुआ जब मैं माण्डले के किले में अंगरेज़ी पहरे में बन्द था। मगर मैं अपने विचार पर अमल करने से रुकता रहा। मुझे भय था कि कहीं मेरा लेख फिरंगियों के हाथ में न पड़ जाय और वह उसका हाल जानकर मेरी और भी अधिक बरबादी पर तुल जाँय। मगर इससे भी ज्यादा जिस बात ने मुझे अपने हालात को लेखबद्ध करने से रोका वह उन लोगों के नफ़ा नुक़सान का ख्याल था जिनकी चर्चा मेरे लेख में आवेगी। फिर भी इस विचार ने मेरे दिल को इतना काबू कर लिया कि मैंने एक ऐसा उपन्यास लिखना शुरू किया जिस में अपनी ज़िन्दगी के हालात आजाँय। यह उपन्यास अभी पूरा होने नहीं पाया था कि मैं छूट गया।

उसके बाद उसे समाप्त करने का समय मुझे न मिला। १६१० ई० में जब भाई परमानन्द के मुकद्दमे के सम्बन्ध में घरकी तलाशी की आशङ्का हुई तब मैंने अपने सब काग़ज़ात पत्रव्यवहार और लेख अपने से अलग किए। मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे सब काग़ज़ मेरे पिता व मेरे चाचा की सम्मति से जला दिए गए। कम से कम मुझ से यही कहा गया कि

वह सब कागज़ नष्ट कर दिए गए और मुझे इस बात पर विश्वास न करने का कोई कारण न था। १९१० ई० से १९१४ ई० तक मैंने कई बार विचार किया कि अपने जीवन की घटनाएँ लिखूँ मगर इसी विचार से रुका रहा कि कहीं मेरा लेख मेरी कौम के दुश्मनों के हाथों में न पड़ जाय। इस बार जो मैं इंगलैण्ड को चला तो मैंने पक्का इरादा किया कि अपने देश को लौटने से पहले मैं ज़रूर अपनी जिन्दगी की कहानी लेखबद्ध कर किसी सुरक्षित स्थान में रखदूंगा। आज मैं उस विचार की पूर्ति में यह काम आरम्भ करता हूँ। लेकिन ऐसा करने से पहले कुछ शब्दों में यह बयान कर देना चाहता हूँ कि मैं क्यों ऐसा कर रहा हूँ। मेरे देशवासी मेरे सम्बन्ध में चाहे कुछ भी विचार करें चाहे मुझे श्रेष्ठ पुरुष समझें या एक तुच्छ आत्मश्लाघी। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि मैंने अपने देश के सार्वजनिक जीवन में इतना भाग लिया है कि जिस से मुझे अपने शिक्षित देशवासियों की बड़ी संख्या से काम पड़ा है। पिछले बत्तीस सालों में हिन्दुस्तानके जातीय-जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जो मेरे अनुशीलन से बाहर रहा हो और जिसमें किसी न किसी दर्जे तक मैंने भाग न लिया हो। मेरे दुश्मनों के कथनानुसार भिन्न भिन्न समुदायों भिन्न २ प्रकारों और भिन्न २ कामों के तार मेरे हाथों में रहे हैं। ऐसी सूरत में मुझे अपने देश के पिछले बत्तीस साल

के इतिहास का ज़ाती इल्म है। इस इतिहास के बनाने में भी मैंने कुछ हिस्सा लिया है और दूसरों को उस इतिहास को बनाते देखा है। मुझे इस बातका पता है कि जातीय आन्दोलन की भिन्न भिन्न अवस्थायें किन कारणों से प्रभावित हुई और किन हाथों से सञ्चालित हुई और किस तरह उनमें परिवर्तन होते रहे।

अगर आज मेरे काग़ज़ात और मेरे रोज़नामचे तथा असली पत्र जिनको मैंने संभाल कर रखा था मौजूद होते तो मैं लिखित आधार पर अपनी कहानी लिखता। चूंकि यह सब कागज़ात और दस्तावेज़ नष्ट हो चुके हैं, इस लिये मुझे केवल अपनी याद पर भरोसा करना होगा और इन बातों के सच्चे होने का प्रमाण सिवाय मेरी याद के और कोई नहीं। मेरी गर्ज़ इन बातों को लिखने से यह है कि मेरे प्यारे देश की आने वाली सन्तान को यह मालूम होजाय कि हमारे जातीयआन्दोलन की क्या २ अवस्थाएं रही हैं, इस आन्दोलन के सञ्चालकों, इसके कार्यकर्ताओं और नेताओं ने क्या २ भूलें की और किस किस तरह परीक्षा के समय वह सफल या असफल उतरे, जिसमें जो लोग इस कथा को पढ़ें वे इससे फ़ायदा उठावें।

मेरा विचार है कि अभी हमारे दौर्भाग्य का समय लम्बा है। कुछ मित्र यह समझते हैं कि हमारा आन्दोलन

शीघ्र सफल होगा और देश बहुत जल्द स्वतन्त्र हो जायगा। मुझे खेद है कि मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। मेरे ख्याल में जो खेंचतान इस समय जारी है वह बहुत लम्बी है। हमारे दुश्मन ताक़तवर हैं। हमारे दोस्त थोड़े और कमज़ोर हैं। जिन उपायों से जातीय आन्दोलनों को सफलता नसीब होती है उनसे हम अभी अनजान हैं। हमारे घरेलू शत्रु इतने अधिक हैं और हमारे अन्दर इतने गहरे भेद हैं कि अभी जल्द इन भेदों का दूर होना और घरेलू शत्रुओं का नष्ट होना बहुत कठिन मालूम होता है।

पिछले सात वर्षों में मैंने जो कुछ देखा, सुना व अनुभव किया है उससे मैं लगातार आशावादी बनता गया। इसमें सन्देह नहीं कि पिछले १० वर्षों की जागृति के कई पहलू आशाजनक और उत्साह बढ़ाने वाले हैं। परन्तु इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस जागृति के कुछेक पहलू ऐसे भी हैं जो निराशाजनक है। १६०५ ई० मे मैंने जोसफ़ मेजिनी का जीवन चारित्र लिखा था। उस समय मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था कि राष्ट्रीय जागृति इस प्रकार शीघ्रता और सफलता के साथ दिन दिन प्रबल होती जायगी जैसा कि १६०७ ई० से इस समय तक देखने में आ रही है। मैं समझता था कि वह समय अभी दूर है जब कि मेरे स्वदेशवासी नवयुवक राजनैतिक स्वाधीनता को महत्व-

पूर्ण बात समझ कर उसके लिये अपनी जान देंगे; और उन के इस कार्य से जाति में स्वाधीनता की लहर इतना ज़ोर पकड़ लेगी कि एक तहलका मच जायगा।

मुझे बिलकुल ख्याल न था कि मेरे इस लेख से दस बरस के अन्दर अन्दर देश में ऐसी संस्थाएं पैदा हो जायँगी जो अपने अमली जीवन और बलिदान से मेरे इस कथन की सत्यता को साबित करेंगी कि राजनैतिक स्वाधीनता संसार की उत्तम वस्तुओं में उत्तम वस्तु है। इसके प्राप्त करने के लिये जितना भी बलिदान किया जाय कम है।

१६०७ ई० में देश व जाति में जागृति के जो भाव दिखाई दिये—उसके बाद विशेषतः बंगाल में, और साधारणतः देश के भिन्न भिन्न भागों में समय समय पर जो घटनाएं हुईं; उनसे यह बात साफ़ दिखाई देने लगी कि देश में स्वाधीनता की चाह तथा भाव किस गहराई तक घर कर चुके हैं।

कुछेक दूरदर्शी और नीतिमान् देशभक्त उन नवयुवकों के कार्यों को बुरा मनाते हैं जिन्हों ने राष्ट्रीयता के भाव से प्रेरित होकर अंगरेज़ों व हिन्दुस्तानी देशद्रोहियों पर वार किये और देश में राजनैतिक षड्यंत्रों के आन्दोलन को फैलाया और गुप्त समितियां कायम कीं। लेकिन कोई भी आदमी अपने दिल में इन नौजवानों की जानबाज़ी बहादुरी

और देशभक्ति और चरित्र की पवित्रता और श्रेष्ठता से इनकारी नहीं कर सकता।

लोग अंगरेज़ों के भय, अथवा अपने ही भाइयों से दुर्व्यवहार की आशङ्का से अपने असली विचारों को छिपा लेंगे। परन्तु इससे कोई इनकारी नहीं कर सकता कि जिन नौजवानों ने बंगाल में गोसाईं की हत्या का मनसूबा बांध कर, उसे पूर्ण किया वह हमेशा के लिये अमर होगए। अभी समय आयगा कि जाति व देश उन की समाधि पर फूल चढ़ाएंगे।

इसी तरह जिस आदमी ने १६१२ ई० के दिल्ली दरवार के मौके पर लार्ड हार्डिङ्ग पर बम फेंका उसने एक स्मरणीय याद रखने लायक कार्य किया। इस आदमी की दिलेरी व बहादुरी अपना सानी नहीं रखती। इससे भी अधिक हौसला दिलाने वाली बात यह है कि एक शक्तिशाली शानदार साम्राज्य के सत्र साधन व शक्ति उस वीर का पता लगाने में आज तक असमर्थ साबित हुई है। यह तमाम बातें निःसन्देह हौसला व आशा दिलाने वाली हैं।

यह सब कुछ होते हुए भी जो आदमी अपने देश की असली अवस्था को जानते हैं वह चित्र के स्याह रंग को देखकर, और उसके परिणाम निकाले बिना नहीं रह सकते कि देश की राजनैतिक अवस्था क्या है? मेरी सम्मति में

देश की राजनैतिक अवस्था का चित्र इस प्रकार खींचा जा सकता है।

(१) हिन्दुस्तानी देशभक्तों की छोटी सी टोली गुप्त समितियां बनाती है और उनके द्वारा स्वतन्त्रता का प्रचार करती है। इस टोली के लोग प्रायः निर्धन परन्तु कर्मवीर नवयुवक हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन लोगों में कुछेक लोग ऐसे भी हैं जो खूब रुपया कमा सकते हैं और फिरंगियों की नौकरियों में ऊँचे ओहदे प्राप्त कर सकते हैं। बड़ी संख्या ऐसे नवयुवकों की है जो वर्तमान राजनैतिक दशा में सांसारिक दृष्टि से सफल नहीं हो सकते। देश की आम जनता को इन लोगों से सहानुभूति अवश्य है लेकिन वह इनके कार्यों को पागलपन समझती है। देश की शिक्षित श्रेणी को भी इन लोगों से सहानुभूति ज़रूर है परन्तु ऐसे लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है जो वास्तव में ऐसे लोगों की कारवाई से नफ़रत करते हों। हां, ऐसे लोगों की संख्या पर्याप्त है जो इन की कार्यवाही को फ़िज़ूल और वर्तमान समय के लिये अनावश्यक समझते हैं। बल्कि कई दृष्टियों से इसे हानिकर भी समझते हैं। परन्तु ऐसे लोग बहुत कम हैं जो अपने जीवन व धन को ज़ोखिम में डाल कर या तो इन के साथ मिल कर इन्हें अपनी इन षड्यंत्रकारी बातों से रोकें या अपनी सहानुभूति का अमली सबूत दें।

(२) देश की साधारण शिक्षित जनता और उनके नेता डरपोक, बुज़दिल, स्वार्थी और कुटिल दिल वाले हैं। इन लोगों की बड़ी संख्या देश को स्वतन्त्र हुआ देखना चाहती है परन्तु इसके लिये किसी प्रकार की शख़्सी व माली त्याग व कुर्बानी करने के लिये तैय्यार नहीं है।

अंग्रेज़ी शिक्षा और वर्तमान समय के इनके रहन सहन का जो रंग ढंग है इसने इन लोगों को त्याग व कुर्बानी के अयोग्य (नाकाबिल) बना दिया है। इन में से ७५ फी सदी तो यह बात मानते ही नहीं कि भारतवर्ष को कभी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त भी होगी। उन में ६० फी सदी यह नहीं जानते कि यदि भारतवर्ष स्वतन्त्र होगया तो वह क्या करेंगे? और उस समय उनका क्या कर्तव्य होगा। मेरे विचार में यदि अंगरेज़ यह घोषणा कर दें कि वह सप्ताह भर में इस देश को छोड़ कर चले जायंगे तो ६० फ़ी सदी हिन्दुस्तानी सच्चे दिल से गिड़गिड़ा कर अंग्रेज़ों की सेवा में अर्ज़ियां भेजेंगे कि वह मुल्क से न जाँय।

इस समय जो लोग अपने भाषणों में राजभक्ति का भाव प्रकट करते हैं वह सब प्रायः मक्कारी पर आश्रित है। शिक्षित हिन्दुस्तानियों में से एक प्रतिशतक आदमी ऐसे नहीं मिलेंगे जो सच्चे दिल से अंग्रेज़ों के भक्त हों। मेरी सम्मति में भारत में अंग्रेज़ों के वास्तविक निष्काम मित्र तो १०००० में से एक भी न होगा।

हां, यह कहा जा सकता है कि शिक्षित समुदाय में से ५० प्रति शतक ऐसे हैं जो चाहते हैं कि कम से कम उनके जीवन काल में अंग्रेज़ इस देश से न जाँय। क्यों कि यह लोग उन कष्टों का सामना करने में असमर्थ हैं, जो राजनैतिक परिवर्तनों या राजनैतिक अशान्ति के समय में देश में पैदा होते हैं। यह लोग आराम और भोगविलास के जीवन में पले हैं। सारा जीवन अच्छा खाया अच्छा पहना है, कभी अशान्ति के कष्टों का अनुभव नहीं किया कभी हथियार को हाथ में नहीं लिया। कभी खेल कूद में किसी का मुकाबला नहीं किया। कष्ट सहन करने का भाव इनके दिल में कभी उत्पन्न नहीं हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा (के कारण) पाकर उन्होंने आसानी से जीविका कमाई और आसानी से जीवन व्यतीत किया। वह यह जानते हैं कि राजनैतिक क्रान्ति के समय सारे समाज की व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। इस लिये यद्यपि यह वाणी द्वारा स्वतन्त्रता की पुकार करते हैं, दिल से आज़ादी चाहते हैं, परन्तु जब आने वाली भविष्य की अशान्ति और उससे पैदा होने वाले कष्टों का विचार करते हैं तो उनका दिल काँप जाता है। और वह बार बार सोचकर यही निश्चय करते हैं कि यदि पराधीनता के बन्धन पहन कर भी सांसारिक (नेमतें) ऐश्वर्य जो इस समय प्राप्त है—मिल सकता है तो स्वाधीनता की ख़ातिर उनको

लात मारना और शान्ति में विघ्न पैदा करना उचित नहीं। यह लोग धन और ऊँची नौकरियों तथा भोग वासनाओं के गुलाम हैं। उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता का वह मान नहीं जो एक बढ़िया खाने या एक बढ़िया भोजन का या एक कीमती शानदार मोटरकार का है।

वह अधिक से अधिक जो त्याग कर सकते हैं वह यह कि छुट्टियों में किसी स्थान पर, एक लैक्चर झाड़दें, जो किसी प्रकार से उन्हें शासक वर्ग की दृष्टि में न गिराए, या कुछ चन्दा देदें। उनका देशप्रेम निम्नलिखित शर्तों पर आश्रित होता है।

(१) उससे उनकी आमदनी में कोई घाटा न हो।

(२) उससे उनके उन सबन्धों में कोई भेद न आए जो वह अंग्रेज़ों से रखते हैं। और अंग्रेज़ों के दरबार में जो प्रतिष्ठा उनको प्राप्त है उसमें किसी प्रकार का विघ्न न हो। यहां तक कि वह कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते जिससे अंग्रज़ों को यह सन्देह हो कि वह अपनी कौम व अपने देश को अंगरेज़ों की अपेक्षा अधिक समझते हैं।

(३) उससे उन के आराम में विघ्न न पड़े। उतने आराम के लिये नहीं, जितना उन्हें स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है बल्कि पूरा आराम जिस की उन्हें आदत पड़ गई है।

(४) उससे उन के भविष्य की उन्नति की उम्मीदों व अवसरों पर किसी प्रकार की आँच न पहुंचे।

देश की वर्तमान स्थिति का ठीक अन्दाज़ा व अनुमान इस तरह से लगा सकते हैं।

(१) अंग्रेज़ी शिक्षित समुदाय। इस श्रेणी में १००० से ९९९ ऐसे हैं जो दिल से गर्म विचारवाले व क्रान्तिकारी पार्टी के सिद्धान्तों से सहानुभूति रखते हैं जिनको अंग्रेज़ों पर अविश्वास है जो अंग्रेजी हकूमत से दुःखी हैं। यह क्रान्तिकारी पार्टी के कार्यों से उस सीमातक खुश होते हैं जिस हद्द तक उनके लाभ व आराम में किसी प्रकार की हानि न हो। इस पार्टी में से ५० फ़ी सदी तो ऐसे हैं जिनको देश की राजनीतिक बातों के लिये विचार करने की .फ़ुर्सत नहीं। २५ फी सदी अन्य ऐसे हैं जिन्हें .फ़ुर्सत तो है परन्तु वह इस जंजाल व झमेले में फँसना नहीं चाहते। शेष २५ फ़ी, सदी में से दस फ़ी सदी राजनीतिक विचार व कार्य करते हैं जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है। शेष २५ प्रतिशतक में से १० फ़ी. सदी देशद्रोही हैं। केवल ५ प्रतिशतक ऐसे हैं जो अपने विचारों को क्रियात्मक रूप देने के लिये त्याग करने को उद्यत हैं। इस त्याग की सीमा प्रत्येक व्यक्ति के लिये भिन्न भिन्न है।

(२) पुराने ढर्रे के शिक्षित लोग। इन मौलवी व

पण्डितों में से लगभग पच्चीस प्रतिशतक देशद्रोही हैं। पचास प्रतिशतक बेपरवाह हैं। पच्चीस प्रतिशतक ऐसे हैं जिनसे देशभक्त काम ले सकते हैं, बशर्ते कि उचित ढंग से उनकी सहानुभूति प्राप्त की जाय।

(३) दुकानदार व पुराने ढंग के व्यापारी। इनमें से ९९ प्रतिशतक बेपरवाह हैं। और शेष एक प्रतिशतक ऐसे हैं जिन को देशभक्त प्रभावित कर सकते हैं।

(४) किसान। इन की अवस्था दुकानदारों व व्यापारियों की भाँति है; जैसा कि संख्या तीन में वर्णन किया गया है।

(५) रईस व ज़मींदार। पुराने ढँग के ताल्लुकेदार जमींदार और रईसों में से पचास प्रतिशतक देशद्रोही हैं। पच्चीस प्रतिशतक अंगरेज़ों के शत्रु हैं। पच्चीस प्रतिशतक बेपरवाह हैं।

भाव यह है कि देश में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है जो स्वाधीनता के लिये अपने जीवन व धन को कुर्बान करने के लिये तैय्यार हों।

साधारण जनता में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का भाव अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ है। जो लोग क्रांतिकारी दल पर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने जल्दबाज़ी सीनाज़ोरी व पागलपन से देश को नुकसान पहुँचाया है, अंगरेज़ों को खबरदार कर दिया है। वह इस सचाई को भूल जाते हैं कि

विदेशी जाति के शासन में शान्ति का ज़माना, जिस में दमन व अत्याचार न हो देश के लिये हानिकर होता है। नर्म दल के लोगों के कार्य्य पचास वर्षों में भी देश में जागृति नहीं पैदा कर सकते थे जो गर्मदल के दस साल के कार्य्य ने पैदा कर दी है।

जाति के उतराव चढ़ाव का पता लगाना असम्भव है। परन्तु साधारण बुद्धि वाला आदमी भी यह समझ सकता है कि किसी पराधीन जाति के लिये अमन व शान्ति से ज्यादा हानिकर अवस्था और कोई नहीं हो सकती। क्रान्तिकारी पार्टी के कार्यों का हर एक देश में तत्काल यह परिणाम होता है कि पहले जागृति और फिर नैतिक पतन या प्रतिक्रिया। हिन्दुस्तान इस समय घोर निराशा की अवस्था में है। हर एक आदमी ने मक्कारी का स्वाँग रचा हुआ है, क्यों कि ऐसे समय में सच बोलना भयजनक होता है।

विदेशी जाति के शासन में सिर्फ़ उस कदर सत्य बोला जा सकता है जिस कदर शासकों के शासन की स्थिरता को नुकसान न पहुंचे और यह सत्य सरकार के विरुद्ध न हो। कोई भी विदेशी सरकार ऐसे सत्य का प्रचार नहीं होने देगी जिससे ज़रा भी उनके शासन या हकूमत के कमज़ोर होने का संदेह है।

विदेशी सरकार अपनी प्रजा में साम और दण्ड

दाना का लगातार क्रम जारी रखती है । विदेशी जाति का यह स्वार्थ होता है कि अधिक संख्या वाले लोगों में यह विचार फैलाए कि वर्तमान शासन प्रणाली उनके लिये अच्छी और लाभदायक है और उस में कोई भी परिवर्तन उनके लिये हानिकर होगा ।

सरकार उन को यह उम्मीद दिलाती है कि इसी शासन के आधीन रहते हुए वह इससे भी अधिक खुशी प्राप्त कर सकते हैं । और उनको यह भय दिखाते हैं कि अगर उन्होंने ज़रा भी शासन व सरकार को उलटने का प्रयत्न किया तो वह इसी तरह पांव तले रौंदे जायंगे कि फिर उनके लिये उठने व जागृत होने का कोई अवसर न रहेगा । अंग्रेज़ी सरकार सदा से इन सिद्धान्तों के अनुसार काम करती रही है । साधारण जनता में यह विचार फैलाए जाते हैं । हर एक समुदाय व श्रेणी में पृथक् पृथक् इस विचार को फैलाते हैं । हिन्दुओं को मुसलमानों का भय दिखाते हैं; और मुसलमानों को हिन्दुओं का । किसानों को महाजनों का, महाजनों को किसानों का इत्यादि ।

ऐसे समय हर एक देशभक्त का यह कर्तव्य है कि वह देश को इस अज्ञान की निद्रा से जगाता रहे । और लोगों में स्वाधीनता की इच्छा पैदा करने के लिये नाना प्रकार के उपायों का प्रयोग करता रहे । इन भिन्न भिन्न साधनों से कई

वार सांसारिक दृष्टि से हानि भी होती है। परन्तु याद रखना चाहिए कि कोई भी उत्तम पदार्थ संसार में कष्ट सहे बिना प्राप्त नहीं हो सकता। (no risk, no gain) और स्वतन्त्रता जैसे अमूल्य रत्न के लिये तो कष्ट सहने ही पड़ेंगे।

स्वतन्त्रता के लिये किये जाने वाले कार्य्य सदा आपत्तियों से भरपूर होते हैं। जो लोग इस यत्न में लगे रहते हैं, उनके मार्ग में आपत्तियां तो आती ही हैं। परन्तु इस पीढ़ी के शिक्षित हिंदुस्तानी का दिल और दिमाग़ इन आपत्तियों में पड़ने से काँपता है और इस वास्ते यह उम्मीद करना कि भारतवर्ष जल्द स्वतन्त्र होगा मुझको इस समय शेख़चिल्ली के मनसूबों से ज्यादह: कीमत का मालूम नहीं होता।

मुझको ऐसा दिखाई देता है कि यह लड़ाई लम्बी होगी और इसमें हिन्दुस्तानियों की कई पीढ़ियों को लगना पड़ेगा। हिंदुस्तानी देशभक्तों को इस बारे में आयरलैण्ड के इतिहास से सबक सीखना चाहिए। ऐसी लम्बी लड़ाई में लाखों की जानें जायेंगी, हजारों को देश निकाला मिलेगा लाखों विधवाएँ हो जायँगी, न मालूम क्या क्या होगा ? हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि इस प्रकार की लड़ाइ देंर तक चलने वाली और थकानेवाली है। (The struggle is long and weary) इसके लिये हर एक देशभक्त का यह

धर्म है कि अपनी कोशिशों को हमेशा इस तरह चलाए कि इस लड़ाई के देर तक जारी रखने में अनावश्यक दिक्क़तें न आवें। नेताओं को दूरदर्शी होना चाहिए। उन्हें कम से कम एक सदी तक इस युद्धको जारी रखने के सामान पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए। बेबुनियाद कोशिशों से इस कारण भी बचना चाहिये कि उससे देश में अविश्वास बढ़ने का भय है। स्वतन्त्रता के आन्दोलन के लिये जहां गहरा विश्वास आवश्यक वहां इसके साथ ही बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का होना भी ज़रूरी है। अस्तु! यह तो एक बीच की बात हुई। मेरा मतलब तो यह था कि यह बताऊँ कि मेरे जीवन की यह राम कहानी मेरे देशवासियों के लिये क्यों लाभदायक होगी। इसके लिखने में मेरा अभिप्राय यह है कि यह लड़ाई देरतक चलेगी, इसलिये हर एक पीढ़ी को यह मालूम होना चाहिए कि उनके पूर्वगामी पूर्वजों ने कहां कहां भूलें की और क्यों उनको असफलता हुई। एक विदेश के मुकाबले में राजनैतिक स्वाधीनता का आंदोलन शतरञ्ज के खेल के समान है। दोनों पक्ष एक दूसरे को जीतने का इरादा रखते हैं। खेल के बीच में बहुत बार चालें बदलनी पड़ती हैं। पहले से सोची हुई चाल छोड़ कर नई चालें चलनी पड़ती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक शतरंज में भी बीसियों बार

चालें बदलनी पड़ती हैं। यह ऐसा खेल है जिसमें अन्तिम परिणाम के लिये एक के बाद एक, कई पीढ़ियों को लगातार जीवन लगाना पड़ता है। इस लिये आवश्यक है कि वह अपने पूर्व गामियों की चालों से परिचित हों।

---

(२)

मेरे दादा

अपने बचपन की कथा मैं संक्षेप से ही लिखूंगा। मेरे पिता जाति के अग्रवाल बनिया थे। कई पीढ़ियों से वह लुधियाना से २४ मील फिरोज़पुर की तरफ जगरांव में रहते थे। उससे पहले वह मलेरकोटला के रहने वाले थे। मेरे दादा एक दुकानदार थे। मेरे पिता १८४५ ई० जनवरी को लाहौर में पैदा हुए। इसी दिन अंगरेजों ने मुद्‌गी ज़िला फिरोजपुर की लड़ाई में सिक्खों को हराया था। उनके बचपन में मेरे दादा कई बरसों से अंगरेजों की तरफ़ से पास के एक गाँव में पटवारी रहे थे। यह सिवाय अपनी महाजनी लिपि के और कुछ नहीं पढ़े थे। मैंने अपने दादा को अच्छी तरह से देखा है और मैं कह सकता हूँ कि वह बड़े पुरुषार्थी उत्साही और साहसी आदमी थे। क़द के छोटे निहायत ज़हीन अकलमन्द और मिलनसार थे। यात्रा के लिये हमेशा तैय्यार रहते थे; और दोस्त बहुत जल्द बना लेते थे। काम

याब दुकानदारी के तरीके के अनुसार वह हर तरह से रुपया कमाने के लिये तत्पर रहते थे। वह जैनी थे। अपने धर्म के पाबन्द थे। जैनियों के उस सम्प्रदाय से उन का सम्बन्ध था, जिनके साधु मुँह पर कपड़ा बांधे रहते हैं। दोनों समय वह अपने धार्मिक कर्तव्य का पालन किया करते थे। अपने सम्प्रदाय के साधुओं की संगति में रहते थे और उन की सेवा करते थे।

मृत्यु होने से एक दिन पूर्वतक वह अपना सब काम करते रहे। केवल एक रोज़ की बीमारी के बाद वह परलोक सिधार गए।

हमारी दादी बिलकुल दूसरी तरह की स्त्री थी। ऐसी नेकनियत और सीधी साधी औरत आजतक मेरे देखने में नहीं आई।

वह २० से ज्यादा नहीं गिन सकती थीं। उमर भर उन्होंने कभी ताला नहीं लगाया और नाहीं चाबी कभी अपने पास रक्खी। रुपया जमा करने के नाकाबिल थीं और इस लिये हमारे दादा कभी उनको बहुत रुपये नहीं देते थे। गहने का उनको शौक न था और न कपड़े का। दानशीलता उनमें इतनी थी कि जो चीज़ उनके पति उनको लाकर देते थे वह मुहल्ले में बांट देती थीं। हर एक का काम काज कर देती थीं। बच्चों के साथ मिल कर कौड़ियों का खेल खेलने

लग जाती थीं। अक़सर रोटी तरकारी या शाक हाथ पर रखलेतीं थीं और इसी तरह अपना खाना खाती थीं।

कभी कभी वह बेहोश हो जाती थीं और उस वक़्त ऐसा समझा जाता था कि हमारे दादा की मृतबहिन की रूह उनके अन्दर आजाती थी। उस समय वह जो बातें करती थीं मानो हमारे दादा की बहिन की तरफ़ से करती थीं। जिस समय वह इस अवस्था में आती थीं सारा परिवार इकट्ठा हो जाता था। और हरेक आदमी अपनी इच्छा और स्वभाव के अनुसार सलाह लेता था और वह जबाब देतीं थीं। मैंने भी कई वार अपनी दादी को इस हालत में देखा है। मैं नहीं कह सकता कि इस घटना की जड़ में क्या बात थी। बीमार तो वह बहुत कम होतीं थीं। लेकिन एक बात मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि मकर या फ़रेब छल या पाखण्ड मेरी दादी के पास नहीं फटका था। और वह अपने स्वभाव, अपने चरित्र से इस योग्य ही न थीं कि किसी तरह का पाखण्ड रचतीं। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। इस दशा में जिस घटना का मैंने ऊपर बयान किया है उसका कारण बताना कठिन है।

इस घटना के सम्बन्ध में मैं यह बयान कर देना उचित समझता हूं कि मेरी दादी अपनी इस अवस्था में प्रायः आगे की होनेवाली घटनाओं का भी बयान कर देती थीं और कई

एसी बातें भी कह देती थीं जो किसी को मालूम न रहती थीं। जहां तक मुझे याद पड़ता है मैं कह सकता हूं कि बहुत सी बातें ऐसी हुईं जिन्हें वह बता चुकी थीं। हमारे कुटुम्ब को उन पर बहुत विश्वास था।

(३)

मेरे पिता

मेरे पिता जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है सन् १८४५ ई० को जनवरी मास में पैदा हुए। १८४६ में अंग्रेज़ों ने पंजाब पर कब्ज़ा किया। मगर उनकी अमलदारी सतलज के उस पार, जहां हमारा शहर है; पहले से थी। मेरे पिता ने अंग्रेज़ों के कायम किये हुए फ़ारसी मदरसे में शिक्षा पाई। इस मदरसे का मुख्य अध्यापक एक मुसलमान मौलवी था। यह अपने मज़हब का पक्का, निहायत दीनदार, और परहेज़गार था। उसका चरित्र इतना अच्छा था कि केवल उस की मुहब्बत के असर से उसके सारे चेलों पर मुसलमानी रंग चढ़ गया। उन में से कई तो मुसलमान हो गये, लेकिन जिन्होंने नियमित रीति से धर्म नहीं बदला वह भी अपने विश्वास में लगभग उम्रभर मुसलमान रहे। मेरे पिता भी इस श्रेणी में थे। मेरे पिता कुछ समय तक अपने शहर में इन मौलवी साहब से पढ़ते रहे। इस के बाद देहली के नार्मल स्कूल में

ला० लाजपतराय जी के पिता

ला० राधाकृष्ण जी

शिक्षा पाई। वह सदा अपनी श्रेणी में प्रथम रहते थे, और नार्मल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में, पंजाब भर में प्रथम रहे। कुछ विषयों में उन्होंने पूरे नम्बर पाए जिनमें गणित और मनोविज्ञान भी थे।

विद्या का व्यसन उनको उम्र भर रहा। इस समय जब कि मैं यह राम कहानी लिख रहा हूं उनकी आयु लगभग ७० वर्ष की है। जनवरी मास में उनकी ७१ वीं वर्ष गांठ होगी। इस उम्र में भी वह दिन रात पढ़ते रहते हैं। जो किताब या समाचार पत्र उर्दू में फ़ारसी में हिन्दी में या गुरुमुखी में उनको मिल जाय उस को पढ़ डालते हैं। और अगर कोई चीज़ नई न मिली तो फिर पुरानी किताबों को पढ़ते रहते हैं। हर विषय की किताबें वह पढ़ते हैं, लेकिन धर्म और इतिहास के लिये उनकी विशेष रुचि है। धर्म के विषय में उनका ज्ञान बहुत विस्तृत और गहरा है। इस्लाम, हिन्दूधर्म, ईसाई धर्म जैन बौद्ध सबका उनको अच्छा ज्ञान है। कुरान तो उन्होंने बीसियों बार पढ़ा होगा। ऐसे ही उपनिषदों को भी उन्होंने शायद् बीस से अधिक बार पढ़ा है। इञ्जील, जैन, और बौद्ध धर्म की किताबें भी बहुत देखी हैं। इस के अतिरिक्त साधारण आर्थिक साहित्य की भी उन को अच्छी जानकारी है।

अपनी उम्र के पहले पच्चास तीस साल तक उनका

इस्लाम धर्म पर विश्वास था। नमाज़ पढ़ते थे। रोज़ा रखते थे। विद्वानों और मौलवियों से भी उनका अधिक परिचय था। जब सय्यद अहमदखां ने अपना धार्मिक और सामाजिक काम आरम्भ किया तब उनके लेख पढ़ कर मेरे पिता उनके अनुयायी बन गए। चालीस बर्ष की उम्र तक वह सय्यद अहमद ख़ानी फ़िर्के के मुसलमान रहे। इनको उन दिनों में नेचरी (प्रकृति वादी) कहा जाता था। इस समय वह हिन्दू धर्म और आर्यसमाज के कट्टर विरोधी रहे। और ब्रह्मसमाजी समाचार पत्रों में, हिन्दू धर्म और आर्यसमाज के सिद्धान्तों और उपदेशों के विरोध में लिखते रहे। लेकिन जब मैं आर्य समाज में दाखिल होगया और उन्होंने हिन्दू धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन किया तब उनके बिचारों में बहुत परिवर्तन होगया। यहां तक कि अपनी आयु के अन्तिम भाग में, वह वेदान्ती होगए और इस समय वह वेदान्तमत के मानने वाले हैं। परन्तु अब भी उनको मुसलमानों के धार्मिक साहित्य से बहुत प्रेम है।

इसका सबब मेरी माता की बुद्धिमानी और उनकी सहनशीलता थी। मेरे पिता को हमेशा अपनी सन्तान से बहुत गहरी मुहब्बत रही है। मेरी माता को जल्द ही मालूम होगया था कि मेरे पिता मुसलमानी विचार रखते हैं। इसलिये वह सदा यत्न करती थी कि उनको हिन्दू वेष में

भी पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता रहे। वह हर तरह उनकी सेवा करती थीं और उनके मुसलमानी रहन सहन को बर्दाश्त करती थीं। जब मेरे पिता के मुसलमान दोस्त हमारे घर में खाना खाते थे तो वह उनके जूठे बर्तन आग डाल कर साफ़ कर लेती थीं। यहां तक कि मेरे पिता कभी कभी घर ही में गोश्त बनाते थे। मुसलमानों के घर से पका हुआ खाना ले आते थे, वह कभी विरोध नहीं करती थीं, और हरतरह से उनको खुश रखने की कोशिश करती थीं। मेरी माता बहुत क्रोधी तबीयत की थीं। उनको विरोध सहने की शक्ति न थीं। वह थोड़ी सी बात में क्रोधित हो जाती थीं। मगर अपने बच्चों और पति के प्रेम में उन्होंने वह बातें भी सहीं जिनसे उनको घृणा थी। वह ऐसे कुनबे में, पैदा हुई थीं, जहां सिक्ख धर्म का राज था।

मेरे नाना नानी और मामा सब सिक्ख थे, और केश रखते थे और जपजी का पाठ करते थे। हिन्दू त्योहार और रसम भी मनाते थे। मगर धार्मिक त्यौहार में गुरुग्रन्थ साहब की पूजा करते थे। मेरे नाना के एक भाई ग्रन्थी थे। मेरी नानी तड़के सूरज निकलने से एक पहर पहले उठती और जपजीका पाठ करती थीं और सुबह तक करती रहती थीं। इन सबको मुसलमानों से और मुसलमान धर्म से घृणा थी। मगर भाग्य का फेर। मेरी माता का व्याह एक ऐसे पुरुष से हुआ जो

मुसलमानी धर्म का विश्वासी और मुसलमानों का मित्र था और प्रति दिन मुसलमान हो जाने की धमकी देता था। जब मैं इस बात पर विचार करता हूं कि मुसलमान अपने मज़-हब में कैसे कट्टर हैं, वह इसलाम के प्रचार को अपना कर्तव्य समझते हैं और किसी मनुष्य को अपने धर्म में लाने को बहुत बड़े पुण्य का काम समझते हैं, तो मैं कल्पना कर सकता हूं कि चालीस वर्ष की आयु तक मेरे पिता के मुस-लमान दोस्तोंने उन पर कैसा दबाव डाला होगा और कितनी बार उनको मुसलमान हो जाने की प्रेरणा की होगी। इस पर भी मेरे पिता का मुसलमान न होना एक अद्भुत बात है और इसका सारा श्रेय मेरी स्वर्गीय माता को है। मुझे खूब याद है कि मेरे बचपन में, वह मेरे पिता के उन धार्मिक अत्याचारों पर घँटों रोया करती थीं। कभी कभी कई दिन खाना न खाती थीं। अपने बच्चों को गोद में लेकर ठंडी साँस भरती थीं, मगर इस पर भी मेरे पिता का साथ छोड़ने को तय्यार न थीं। वह कभी अधिक दिनों के लिये, उनसे अलग नहीं होती थीं सदा उनके ही साथ रहती थीं। उनके व्यव-हारों पर पर्दा डालती थीं और सब कुछ सहन करती थीं। मेरे पिता हिन्दू धर्म हिन्दू रसम रिवाज़ों की हमेशा बुराई किया करते थे, और कभी २ बहुत कड़े शब्दों से हिन्दू देवी देवताओं को याद करते थे। त्यौहारों के अवसरों पर पूजा

में सम्मिलित होना तो दूर रहा, घर में पूजा होने देना भी बुरा समझते थे। तिस पर भी मेरी माता उन सब कर्तव्यों का पालन करती थीं, जो कट्टर हिन्दू घरानों में किये जाते हैं। वह हरेक त्यौहार मनाती थीं, पूजा करती थीं, श्राद्ध करती थीं। प्रायः वह मेरे पिता से छिपा कर यह सब काम करती थीं, कई बार मकान को भीतर से बन्द करके, मेरे पिता के आने से पहले, सब कुछ करके सुचित्त होजाती थीं। मगर जब कभी मेरे पिता उधर से आ निकलते थे, या जब कभी हम में से कोई ऐसी बात कह देता, जिससे हमारे पिता को मालूम हो जाता था, कि हमारी माता ने उनसे छिपा कर मूर्तिपूजा की, तो वह क्रोध करते थे, और हमारी माता को बुरा भला कहते थे। वह बेचारी सब कुछ बर्दाश्त करतीं और रो धो कर, चुप हो जाती थीं। हमारे पिता खुल्लमखुल्ला मुसलमान न हुए क्योंकि वह यह जानते थे कि अगर वह खुल्लमखुल्ला मुसलमान होगये तो हमारी माता बच्चों को लेकर हमारे दादा के, या नाना के घर में चली जायेंगी, मगर उनके साथ मुसलमान न होंगी। यह बात उनको मंजूर न थी। हमारी माता भी इस बात को समझती थीं और इस लिये वह हमारे पिता के सब व्यवहारों को बर्दाश्त करती थीं। उन की धार्मिक स्वतन्त्रता में किसी तरह बाधा न डालती थीं, बल्कि अपने विश्वास के विरुद्ध

और अपनी तबीयत को रोक कर, वह उनकी सब बातों को सहती थीं। मैं काफ़ी तौर पर अपनी माता की बुद्धिमानी और उनकी सहनशीलता की प्रशंसा नहीं कर सकता, विशेष कर जब मैं यह याद करता हूं कि मेरे पिता की आमदनी हमेशा थोड़ी रही और उनकी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण उन की नौकरी सदा अनिश्चितता की भँवर में रही। जब मैं पैदा हुआ तो वह पच्चीस रुपये मासिक पर फ़ारसी शिक्षक थे। लगभग बारह या तेरह वर्ष तक उनके वेतन में कुछ वृद्धि नहीं हुई क्योंकि मेरे पिता कभी किसी हैडमास्टर या इन्स्पैक्टर की खुशामद न करते थे। इस पच्चीस रुपये मासिक में, मेरी माता सारे घर का खर्च चलाती थीं और अपने बच्चों के सब संस्कार करती थीं, कुल त्यौहार मनाती थीं और अपनी हैसियत के अनुसार अपने बच्चों को खाना और कपड़ा अच्छा देती थीं और पड़ोसी, मुहल्ले के रहने वाले और दीन अनाथों को भी अपने खाने पीने में शामिल करती थीं। मेरे पिता का वेतन पैंतीस रुपये मासिक से अधिक कभी नहीं हुआ। आख़ीरी सात या आठ वर्ष में उन को दो तरक्कियां मिलीं एक दफ़ा पांच रुपया माहवार की और दूसरी दफ़ा फिर पाँच रुपया माहवार की। तब तक मैं उन्नीस वर्ष में कमाने लग गया और उनका आर्थिक कष्ट सब समाप्त होगया।

मेरी माता बिलकुल अनपढ़ थीं। मेरे पिता ने कईबार उनको पढ़ाने का यत्न किया और मैंने भी कोशिश की, मगर सफलता न हुई। उसका कारण यह था कि उनको घर के काम काज से और बच्चों की खबरदारी से फ़ुरसत न होती थी। उनकी तन्दुरस्ती हमेशा खराब रहती थी। मेरी माता के दस बच्चे हुए; जिन में से उनकी मौत के समय हम छः जीवित थे, चार भाई और दो बहिन।

---

(४)

शिक्षा का प्रारम्भ

प्रारम्भिक शिक्षा मैंने बहुत कुछ अपने पिता से पाई और कुछ स्कूल और मकतब में। मेरे पिता कसबा रोपड़ के ज़िला स्कूल में, फ़ारसी के अध्यापक थे। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा का सारा समय यहीं कटा। अपनी श्रेणियों में मैं प्रायः प्रथम रहा सिवाय आख़िर सालके। शिक्षाकाल में, मैंने बहुत से ईनाम भी हासिल किये। आयु में मैं अपने साथी विद्यार्थियों में सब से छोटा था और इस कारण से मेरे अध्यापक प्रायः मुझसे प्यार करते थे। तेरह वर्ष की समाप्ति पर मैंने मिडिल स्कूल की परीक्षा पास की और उच्च शिक्षा के लिये, लाहौर भेजा गया। उसके बाद शिक्षा विभाग की ओर से मुझे सात रुपये माहावार की छात्रवृत्ति मिली और

मैंने लाहौर से दिल्ली में शिक्षा पानी आरम्भ की। यहां पर मैं लग भग आठ मास पढ़ता रहा परन्तु बराबर बीमार रहा। मेरा बचपन बहुत कुछ बीमारी में कटा। मैं और मेरे पिता माता आठ वर्ष तक रोपड़ रहे । इस शहर में मलेरिया बहुत था। इस लिये साल में छः मास से अधिक वहां बुख़ार का ज़ोर रहता था, कभी कभी हमारा सारा कुटम्ब बुख़ार से बीमार हो जाता था। रोपड़ में मलेरिया के कारण मेरी तिल्ली बहुत बढ़ गई और जब मैं दिल्ली गया तो बीमार ही रहा। वहां मैं बोर्डिंग हाउस (छात्रालय)में रहता था। वहां का जलवायु भी मेरे अनुकूल न हुआ और आठ महीने में लग भग आधे समय में बीमार रहा।

दिल्ली में भी मेरे शिक्षक मुझ से ख़ुश रहे। दिल्ली जाने से छः मास बाद मेरे पिता की बदली शिमले को हो गई जहां पर वह अपने बाल बाल बच्चों को ले जाने में असमर्थ थे, क्यों कि वहां रहने के लिये, बहुत रुपये की आवश्यकता थी। मेरी माता मेरे भाइयों को लेकर जगरांव चली गई फिर वहीं मैं उनके पास रहने लगा। सन् १८७७ में साढ़े बारह वर्ष की उमर में, मेरा ब्याह हो चुका था। जब मैं दिल्ली से जगरांव आया उस समय मेरी उमर साढ़े चौदह बरस की थी और उस समय मैं अपनी पत्नी को अपनी माता के घर लाया। उस समय तक मैंने अपनी पत्नी को न

देखा ; और नाहीं कभी उससे बात-चीत की थी। १८७६ का शेष सारा साल मैंने जगरांव में अपनी माता और भाइयों की सेवा में बिताया।

सन् १८८० के आरम्भ में लुधियाना के मिशन स्कूल में गया। वहां के हैडमास्टर ने मुझे एक होनहार लायक विद्यार्थी समझ कर छात्रवृत्ति देना शुरू किया। यहां भी बीमारी ने मेरा पीछा न छोड़ा और मैं दो तीन महीने से अधिक यहां न रहा। सन् ८० के अप्रैल में हमारे सौभाग्य से मेरे पिता जी की शिमला से अम्बाला शहर को फिर बदली हो गई। मैं अपनी माता और भाइयों सहित उनके पास अम्बाला शहर में रहने लगा और प्राइवेट रीति से एण्ट्रैन्स की परीक्षा की तैय्यारी करने लगा।

मगर मेरी बदक़िस्मती के दिन अभी खतम नहीं हुए थे। मुझ को अम्बाला शहर में आये हुए अभी दो मास से अधिक न हुए थे कि मैं फिर बहुत बीमार होगया, यहां तक कि लग भग तीन मास तक चारपाई से न उठ सका। दो तीन बार डाक्टर ने मेरे फोड़े को चीरा, बुखार भी आता रहा।

मेरे पिता अपनी नौकरी के समय को छोड़ कर, दिन रात मेरी सेवा करते थे और मेरी माता भी घर के काम काज और अपने दूसरे बच्चों के पोषण के अतिरिक्त अपना सारा समय मेरी सेवा में लगाती थीं।

मैं जब उस समय को याद करता हूं तो मुझे दुःख होता है कि मैंने अपने माता पिता को बहुत कष्ट दिया। बरसात की तमाम मौसम इस कष्ट में कटी। बरसात भी इस साल ग़ज़ब की लगी। दो तीन दफ़ा चौदह और पन्द्रह रोज़ तक मूसलाधार वर्षा होती रही। जिस मकान में हम रहते थे बहुत बड़ा था, मेरे पिता को विशेष रियायत से मिल गया परन्तु अभी नया बना था और इस वर्षा में चूता रहा। कई बार ऐसा हुआ कि मेरे माता पिता को सारी रात मेरी और दूसरे बच्चों की चारपाई इधर से उधर और उधर से ले जाने में बितानी पड़ी। दिन में बेचारी माता को गीले ईन्धन से खाना पकाना पड़ता था। कोई नौकर उनकी सहायता को न था। बेचारे पिता जी छः घण्टे मदरसे में काम करते और शेष सारा समय मेरी सेवा में काटते थे। मैं लग भग सारी उमर अपने माता पिता के कष्ट का कारण रहा, लेकिन यह साल मुझे आज तक कभी नहीं भूला और न भूल सकता है। आखिर बरसात की समाप्ति पर मुझे आराम हुआ और मैंने दो तीन मास में एण्ट्रैन्स की तैय्यारी की।

नवम्बर के महीने में परीक्षा देने के लिये लाहौर गया। लाहौर जाने का यह दूसरा अवसर था। पहली दफ़ा मैं मई सन् १८७८ में लाहौर गया था और दूसरी दफ़ा नवम्बर सन् १८८० में। इस समय मुझे यह कल्पना भी न थी

कि लाहौर मेरे जीवन के साथ ऐसा बंध हो जायगा जैसा कि वह बाद में होगया। उस समय का लाहौर आज के लाहौर से बहुत भिन्न था। उस समय न यह शिक्षा के स्थान थे न रोशनी थी और न यह सफ़ाई। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं लाहौर के स्टेशन पर उतरा और मैंने एक कुली को अपना असबाब दिया तो एक पोलीस वाले ने ज़ोर से पुकार कर यात्रियों को चेतावनी दी कि वह अपने असबाब को सावधानी से ले जावें कहीं कोई चोर उचक्का बदमाश ठग उनके असबाब को न उड़ा ले। यह सुनते ही मेरे दिल में भय पैदा हुआ, और जब मेरा कुली तंग और अंधेरी सड़कों से चलता था तब मेरा दिल काँपता था कि कहीं वह मेरा असबाब लेकर रफ़ूचक्कर न हो जावे और मैं देखता रह जाऊँ। किन्तु मेरा भय अनुचित था। उस समय अभी अंग्रेज़ी सभ्यता का आरम्भ था।

मेरा कुली एक पहाड़ी हिन्दू था। इसकी ईमानदारी और सचाई मैदान की सभ्यता से उतनी प्रभावित नहीं थी जैसी कि वह कुछ समय बाद हो गई। लाहौर में उस समय मेरे पिता जी के दो मित्र थे। एक पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री और दूसरे लाला भवानीदास जो इन दिनों गवर्नमेंएट कालेज में एम. ए. की कक्षा में शिक्षा पाते थे। ला० भवानीदास रोपड़ में मेरे पिता से पढ़ा करते थे और

इस लिये उनको मेरे पिता से प्रेम था। वह गवर्नमैण्ट कालेज के छात्रालय में, जहाँ इस समय लाला हंसराज जी रहते हैं; रहा करते थे। मैं उन के पास जाकर ठहरा वह मुझ से बहुत प्रेम से मिले। उन्हों ने मुझे परीक्षा की तैय्यारी में बहुत मदद की। चिकित्सा शास्त्र में कुछ ख़ास नोट उन्होंने मुझे बताए। मैंने पदार्थविज्ञान की एक छोटी पुस्तक देखी थी। मगर कभी उसके यन्त्रों की सूरत न देखी थी। उन्होंने मुझे वह भी दिखा दिये और मेरी हर तरह से सहायता की।

यह समय पंजाव विश्वविद्यालय (पंजाब युनिवर्सिटी) का प्रारम्भिक समय था। विश्वविद्यालय अभी बचपन में था। उसको विश्वविद्यालय के पूरे अधिकार न मिले थे। डाक्टर लाइटनर साहब उस समय उसके संचालक थे। उनका यह यत्न था कि यह विश्वविद्यालय दूसरे विश्व-विद्यालयों से भिन्न बने। वह इसको एक विशाल पूर्वीय विश्वविद्यालय बनाना चाहते थे; और उनका अभिप्राय यह था कि शिक्षा पूर्वी भाषाओं द्वारा हो। सफल परीक्षार्थियों को वही उपाधियां मिलें जो दूसरे विश्वविद्यालय देते हैं। एण्ट्रेन्स की परीक्षा में विद्यार्थी आठ विषय ले सकते थे और परीक्षाओं में बहुत करापन न था। हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग में उस समय कलकत्ता युनिवर्सिटी का दौर दौरा था। पक्की युनिवर्सिटी यही थी। इसकी परीक्षाओं और इसकी

डिगरियों तथा सनदों का आदर था। लेकिन लोग पंजाब के बिश्वविद्यालय के कालेज की परीक्षाएँ भी देते थे, क्यों कि डाक्टर लाइटनर विद्यार्थियों को अपने विश्वविद्यलय की तरफ खींचने के लिये अपने कालेज की परीक्षाओं के परिणाम पर बहुत सी छात्रवृत्तियां देते थे। इसलिये मैंने दोनों परीक्षाएँ दीं। कलकत्ता विश्वविद्यालय में केवल चार अनिवार्य (Compulsory) विषयों में परीक्षा लेता था अर्थात् अंगरेज़ी इतिहास, भूगोल, गणित और फ़ारसी या संस्कृत या अरबी। पंजाबविश्वविद्यालय में मैंने इन विषयों के अतिरिक्त अरबी, पदार्थ विज्ञान और उर्दू में भी परीक्षा दी अरबी मेरे पिता ने मुझे पढ़ाई थी। मुसलमानी विचारों के कारण उन्हें अरबी से विशेष प्रेम था और उन्हों ने मुझे अरबी पढ़ाने का बहुत यत्न किया था। परन्तु मुझे अरबी से कभी लगाव नहीं हुआ। यद्यपि मैंने अपने बचपन के समय का आधा अंश अरबी भाषा के सीखने और उसके व्याकरण के याद करने में लगाया मगर मुझे कभी उसमें यथेष्ट अभ्यास नहीं हुआ। परीक्षा देने से तीन साल पहले मैंने अरबी के पढ़ने की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया था। केवल भाग्य की परीक्षा के लिये अरबी को मैंने अपनी परीक्षा के विषयों में सम्मिलित कर लिया था। इसलिये जब मैं परीक्षा के कमरे में गया तो खाली कागज़ देकर चला आया!

हां ! अरबी की मौखिक परीक्षा में मैंने पन्द्रह में से तेरह नम्बर पाए। इसी तरह पदार्थविज्ञान में भी मुझे कुछ न आता था। अस्तु।

जनवरी १८८० में इन परीक्षाओं का परिणाम निकल आया और मैं दोनों परीक्षाओं में सफल हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा में मैं प्रथम श्रेणी में सफल हुआ और पंजाबविश्वविद्यालय की परीक्षा में १७० सफल विद्यार्थियों में मेरा नम्बर ५३ वाँ था।

इस समय मेरे पिता के सामने मेरी आगे की शिक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। वह चाहते थे कि मैं उच्च शिक्षा पाऊँ। किन्तु उन का वेतन इतना थोड़ा था कि वह हैरान थे कि वह किस तरह से मुझे खर्च दे सकेंगे। अन्त में उन्हों ने यह निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो मुझे युनिवर्सिटी की शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए।

मैं फर्वरी १८८१ में लाहौर आया और उसी बोर्डिङ्ग हाउस में आकर रहने लगा जहां मैं परीक्षा देने के समय लाला भवानीदास का अतिथि होकर ठहरा था। उन दिनों लाहौर में केवल गवर्नमेण्ट कालेज था। दो रुपये मासिक फ़ीस कालिज की ली जाती थी और बोर्डिङ्ग हाउस में रहने की फ़ीस एक रुपया मासिक थी। यह बोर्डिङ्ग हाउस तीन कोठियों में था दो कोठियां एक ही हाते में थीं। यह अबतक

मौजूद है और इस समय दयानन्द कालेज के हाते में शामिल हैं; उन में से एक में इस समय लाला हंसराज रहते हैं और दूसरी में प्रोफ़ेसर देवीदयाल । तीसरी कोठी कालिज के पास थी जो गिर चुकी है। बोर्डिङ्ग हाउस उस समय बहुत रद्दी हालत में था, खाने पीने का प्रबन्ध विद्यार्थियों के हाथ में था। बोर्डिङ्ग हाउस में किसी प्रकार की कोई निगरानी न थी, टट्टियों और रसोई घर की हालत कहने योग्य न थी।

जब मैं लाहौर में आया गवर्नमेंएट कालेज और बोर्डिङ्ग में भरती हुआ उस समय मेरी आयु सोलह वर्ष दो मास की थी। मैं अपनी कक्षा के सब से कम आयु के लड़कों में था। मैं दो तीन मास तक लाहौर में कष्ट से रहा । मेरी आँखों में बहुत अधिक पीड़ा रही। किसी किसी दिन खाना नसीब न होता था। अन्त में बहुत यत्न के बाद मैं युनिवर्सिटी से आठ रुपया मासिक की छात्र वृत्ति लेने में सफल हुआ।

जब मैं घर से चला था मेरा विचार केवल डिगरी प्राप्त करने के लिये शिक्षा पाने का था। लेकिन जब मैं लाहौर पहुँचा तो बोर्डिङ्गहाऊस में कुछ और विद्यार्थियों की सम्मति से मैं कानून (Law) की कक्षा में भरती हो गया। मेरी छात्रवृत्ति में से दो रुपये गवर्नमेएट कालेज की फ़ीस और तीन रुपये कानून की कक्षा की फ़ीस में और

शायद एक रुपया बोर्डिङ्गहाऊस की फ़ीस में चले जाते थे। मेरे पिता बहुत कठिनता से मुझे आठ या दस रुपये मासिक भेज सकते थे और मैं इस इस छोटी रकम में गुजारा करता था। कानून की किताबों पर बहुत रुपया लगता था लेकिन मैंने आवश्यक किताबों को बहुत सस्ता खरीदा। पुरानी किताबें मोल लीं और कुछ कीमती किताबों के लिये अपने दोस्तों पर भरोसा किया। इसी तरह साधारण शिक्षा की किताबें भी मैंने बहुत कम खरीद कीं। इधर उधर से मांग कर गुज़ारा कर लेता था। मेरे माता-पिता मेरे लिये बहुत कष्ट उठाते थे और उधार लेकर भी रुपया भेजने को तैय्यार थे लेकिन मैं उनको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता था। इस लिये बहुत किफ़ायत और तंगी से रहता था। पहले साल मैंने कानून की प्रथम परीक्षा-अर्थात् मुख़तियारी की परीक्षा के लिये कठिन परिश्रम किया। यहां तक कि मुझे कँवल रोग (Jaundice) हो गया। यह पूरा वर्ष कष्ट में कटा। कुल सूबे में ज्वर का कोप था। जब परीक्षा के दिन पास आए तो लड़कों ने युनिवर्सिटी से प्रार्थना की कि सूबे में ज्वर के कोप से उनको तैय्यारी का यथेष्ट अवसर नहीं मिला। परीक्षा स्थगित की जाय। उनकी प्रार्थना स्वीकृत होगई और दो मास का अधिक समय हम को मिल गया। परीक्षा दिसम्बर के स्थान में १८८२ की फरवरी में हुई।

सौभाग्य से मैं परीक्षा में सफल हो गया और इस सफलता से मुझे अपने आप में बहुत भरोसा हो गया। फिर मैंने वकालत की परीक्षा के लिये, पढ़ना आरम्भ किया। किन्तु अभाग्य वश कुछ ऐसी बातें उपस्थित हुईं जो मेरी सफलता में विरोधी साबित हुईं। एक तो सन् १८८२ ई० के आरम्भ में हिन्दी उर्दू का झगड़ा छिड़ गया और मैंने लग भग दो मास इस झगड़े में लगाए। दूसरे मैं लगभग साल भर ज्वर से पीड़ित रहा तीसरे मेरे दिमाग़ में देश और कौम की भक्ति का विचार समा गया। और मैं बहुतसा समय ऐसे साहित्य के पढ़ने में लगाता रहा, जिसका मेरी परीक्षा से कुछ सम्बन्ध न था। परिणाम यह हुआ कि मैं सन् १८८२ के नवम्बर की परीक्षा में, असफल रहा। और ८३ सन् की जनवरी में मैं मुख़्तियारी का लाइसैन्स लेकर, मुख़्तियारी का काम करने के लिये, जगरांव चला गया। इस तरह से मेरी नियमित शिक्षा का अन्त हुआ।

कुल दो साल से कम, मैं लाहौर के गवर्नमैण्ट कालिज में पढ़ा। इस समय का बहुत सा भाग मैंने कानून की परीक्षा की तैयारी में, बीमारी में, और देश सेवा के प्रारम्भिक पाठ में बिताया। किन्तु गवर्नमैन्ट कालिज के सब अध्यापक मुझ से प्रसन्न थे और मेरा आदर करते थे। उन में से दो अर्थात् गणित के अध्यापक बाबू शशि भूषण मुकर्जी

का और प्रोफ़ैसर अर्जुन को मुझसे विशेष प्रेम था। कालिज में निम्न लिखित सज्जन मेरे सहपाटी थे।

(१) पं० गुरुदत्त एम. ए.

(२) ला० हंसराज बी. ए.

(३) राय शिवनाथ साहब इंजीनियर।

(४) दीवान नरेन्द्रनाथ साहब एम. ए.

(५) प्रो० रुचिराम साहनी एम. ए.।

इनमें से प्रथम तीन सज्जनों के साथ मेरा गहरा सम्बन्ध था जो उमर भर रहा। पं० गुरुदत्त एम. ए. और लाला हंसराज बी. ए. ने मेरे जीवन की घटनाओं के पैदा करने में विशेष भाग लिया। इसकी चर्चा अगले पन्नों में आवेगी।

---

(५)

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश

उन दिनों ब्रह्म समाज के तीनों दलों (पार्टियों) में खूब वाद विघाद चल रहा था। इस वाद विवाद के साहित्य को पढ़ने का मुझे भी मौका मिला। इस अध्ययन ने ब्रह्म समाज के सम्बन्ध में मेरे विचारों में परिवर्तन पैदा कर दिया।

विचार स्वातन्त्र अथवा आदि ब्रह्म समाज के साहित्य से मुझे ईसाई मज़हब की पोल का पता चला। श्रीयुत केशवचन्द्रसेन और उन के भक्तों के व्याख्यानों और लेखों से मैंने इलहाम की ज़रूरत समझी।

साधारण ब्रह्म समाज के लेखों से मैंने यह मालूम किया कि श्री केशवचन्द्र सेन बाबू के पैगम्बरी दावे कैसे बे मतलब हैं। मेरी आयु उस समय अठारह बरस की भी न थी। मेरी शिक्षा बहुत थोड़ी थी। ऐसी हालत में मेरे अन्दर अन्दर ऐसी मानसिक खल बली पैदा हो गई, जिससे मैं बेचैन रहने लगा, और ब्रह्मसमाज से मेरा दिल उचटने लगा।

पण्डित गुरुदत्त जी एम. ए. और लाला हंसराज की संगति में आने से आर्यसमाज के राष्ट्रीयभाव रुचिकर मालूम होने लगे। परन्तु क्योंकि मेरे पिता आर्यसमाज के बहुत विरुद्ध थे, इस लिये मैंने कभी आर्यसमाज में जाने का साहस न किया। मैं उन दिनों अपना रोज़नामचा प्रतिदिन लिखता था क्या ही अच्छा होता कि वह इस वक्त मौजूद होता तो मैं उसमें से कुछ उद्धरण यहां दर्ज करता। मगर अफ़सोस कि मेरे दूसरे कागज़ों के साथ वह भी जल गया और आज मुझे केवल मात्र अपनी स्मरण शक्ति पर भरोसा करना पड़ा है। मेरे जीवन के वह पहले दो साल जो मैंने लाहौर कालेज में

बिताये मेरे लिये महत्त्व पूर्ण (Turning point) साबित हुए। आज बत्तीस साल के बाद मैं उन दो सालों पर दृष्टि डालता हूं तो मैं अनुभव करता हूं कि उन दो सालों में मेरे विचार और स्वभाव जिस रँग में रंगे हुए थे आज भी वह उसी अवस्था में हैं।

मेरे सार्वजनिक चरित्र और मेरी स्थायी भावनाओं को उन्हीं दो बरसों ने स्थिर कर दिया। इसका यह तात्पर्य नहीं कि मुझ में और मेरे विचारों में परिवर्तन नहीं हुए और मैंने अपने जीवन के बत्तीस सालों में कोई नई बात नहीं सीखी। मेरा मतलब यह है कि मेरी जिन्दगी की लहर (Current) उन दो सालों ने स्थिर कर दी और मैं आज-तक उसी लहर में हूं। इन्हीं दो सालों में मैंने हिन्दू कौमियत के साथ अपना नाता जोड़ा। इन्हीं दो सालों में मैंने प्राचीन आर्य सभ्यता की महिमा समझी; और हमेशा के लिये उसको अपना मार्गदर्शक सितारा बनाया।

इन्हीं दिनों मैंने अपनी ज़िन्दगी का उद्देश्य न सिर्फ़ अनुभव ही किया बल्कि अमली तौर पर उसके लिये काम करना भी शुरू कर दिया; और आज तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मैं उन दो बरसों में हिन्दुस्तान की वर्तमान हालत और पुरानी घटनाएं तथा देश के प्राचीन गौरव क वर्णन पढ़कर रोया करता था।

इस समय में मैंने बहुत से बड़े आदमियों के जीवन चरित्र पढ़े, और निश्चय किया कि अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग हिन्दू बुज़ुरगी की व्याख्या में और इस के प्रचार में और हिन्दू क़ौम की सेवा में लगाऊंगा।

इन्हीं दो वर्षों में मैंने न सिर्फ़ जाति-प्रेम और जाति-सेवा का पाठ सीखा बल्कि इन्हीं दो सालों में मेरे दिल को राजनैतिक स्वाधीनता से वह लगाव पैदा हुआ जिसने बाद ऐसे गुल खिलाए।

सन् १८८२ के नवम्बर या दिसम्बर में मैं पहली बार आर्यसमाज में गया। उन दिनों आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव हो रहा था। उस दिन स्वर्गीय लाला मदनसिंह बी. ए. का व्याख्यान था। उनको मेरे से बहुत प्रेम था, उन्होंने व्याख्यान देने से पहले समाजमंदिर की छत पर, मुझे अपना लिखा हुआ व्याख्यान सुनाया और मेरी सम्मति पूछी। मैंने उस व्याख्यान को बहुत पसन्द किया।

जब मैं छत से नीचे उतरा तो स्वर्गीय लाला साईंदास जी ने मुझे पकड़ लिया और अलग लेजा कर कहने लगे कि हमने बहुत समय तक इन्तज़ार किया है कि तुम हमारे साथ मिल जाओ।

मैं उस घड़ी को भूल नहीं सकता। वह मेरे से बातें करते थे मेरे मुँह की तरफ देखते थे और मेरी पीठ पर प्यार

से हाथ फेरते थे। मैंने उनको जवाब दिया कि मैं तो उनके साथ हूं। मेरा इतना कहना था कि उन्होंने फ़ौरन समाज के सभासद् बनने का प्रार्थना पत्र मंगवाया और मेरे सामने रख दिया। मैं दो चार मिनट तक सोचता रहा; परन्तु उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे हस्ताक्षर लिये बिना तुम्हें जाने न दूंगा। मैंने फ़ौरन हस्ताक्षर कर दिये। उस समय उनके चेहरे पर प्रसन्नता की जो झलक दिखाई दी उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। ऐसा मालूम होता था कि उनको हिन्दुस्तान की बादशाहत मिल गई है। उन्होंने एकदम पण्डित गुरुदत्त को बुलाया और सारा हाल सुना कर मुझे उनके हवाले कर दिया। वह भी बहुत .खुश हुए। लाला मदनसिंह के व्याख्यान की समाप्ति पर, लाला साईंदास ने मुझे और पण्डित गुरुदत्त को प्लैट फार्म पर खड़ा कर दिया। हम दोनों से व्याख्यान दिलवाए। लोग बहुत ख़ुश हुए और ख़ूब तालियां बजाईं। इन तालियों ने मेरे दिल पर शराब का-सा असर पैदा कर दिया।

मैं सफलता और प्रसन्नता की मस्ती में मस्त हुआ अपने मकान को वापिस गया।

इस तरह से दिसम्बर सन् ८२ में मैंने आर्यसमाज की नाव में पैर रक्खा। उस समय वह केवल एक छोटी-सी नाव थी। इस ३२ साल के अरसे में वह अब नाव से जहाज़

बन गई है। उस समय आर्यसमाज की नाव मेरी दृष्टि में हिन्दू क़ौमियत की नाव थी। उस समय यह किश्ती अकेली थी और छोटी-सी थी। पिछले ३२ सालों में हिन्दू क़ौमियत ने इतना ज़ोर पाया है कि अब हिन्दू क़ौमियत का एक अपना जबरदस्त बेड़ा है जिसमें आर्यसमाज को ऊंचा स्थान प्राप्त है।

पिछले ३२ सालों में मुझे कभी इस बात का अफ़सोस नहीं हुआ कि मैं आर्यसमाज में क्यों दाख़िल हुआ? मैं हमेशा से इस घटना को अपनी ज़िन्दगी की महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी महान् बात (Turning point) समझता हूं और इसे मैं प्रसन्नता और अभिमान से याद करता हूं।

सन् १९०९ ई० में देश-निकाले से वापिस आने के बाद जो व्याख्यान मैंने लाहौर आर्यसमाज के प्लैटफ़ार्म से दिया था उस में मैंने यह कहा था कि मेरे जीवन में जो हिस्सा ख़राब है वह मेरा अपना है। वह या तो मुझ को विरासत में मिला है या मेरे पूर्वजन्म के संस्कारों का फल है। लेकिन मेरे जीवन का जो हिस्सा अच्छा और लोगों में प्रशंसायोग्य है वह सब आर्यसमाज की बदौलत है। आर्य-समाज ने मुझे वैदिकधर्म से प्यार करना सिखलाया, आर्यसमाज ने मुझे प्राचीन आर्यसभ्यता का मान करना सिखाया, आर्यसमाज ने प्राचीन आर्यों से मेरा सम्बन्ध

जोड़ा और मुझे उनका सेवक और भक्त बनाया।

आर्यसमाज ने मुझे अपनी जाति से प्यार करना सिखलाया, आर्यसमाज ने मुझे कुरबानी का मार्ग दिखलाया। आर्यसमाज ने मेरे अन्दर सत्यधर्म और स्वतन्त्रता की रूह फूँकी। आर्यसमाज ने मुझे सगंठित करने का पाठ सिखलाया। आर्यसमाज ने मुझे यह शिक्षा दी कि समाज धर्म और देश की पूजा और सेवा करनी चाहिए। और उनकी सेवा में जो मनुष्य बलिदान करता है और दुःख उठाता है उसे स्वर्ग का राज्य मिलता है। मतलब यह है कि मैंने सार्वजनिक लोक-सेवा के तमाम सबक़ आर्यसमाज में रहते हुए आर्यसमाज से सीखे। आर्यसमाज के क्षेत्र में मैंने अपने प्यारे मित्र बनाए। आर्यसमाज के क्षेत्र में ही मैंने सार्वजनिक जीवन में पवित्रता के नमूने देखे। आर्यसमाज के उपकार मेरी गरदन पर अनगिनत और असीम हैं। अगर मेरा बाल-बाल भी आर्यसमाज पर निछावर हो जावे तो भी मैं उन उपकारों से उऋण नहीं हो सकता।

अगर मैं आर्यसमाज में दाख़िल न होता तो ईश्वर ही जाने कि क्या होता, मगर यह सच है कि मैं आज जो कुछ हूं वह न होता।

आर्यसमाज के सभासद् बनने से एक सप्ताह के अन्दर ही लाला साईंदास जी ने मुझे एक ज़िम्मावारी के

काम पर रवाना कर दिया। स्वर्गीय स्वामी दयानन्द जी उस समय राजपूताना में थे। उनकी इच्छा थी कि आर्य-समाज में प्रचार के लिये एक प्रचारक निधि जमा किया जाय। चुनांचे उन की आज्ञानुसार, लाहौर आर्यसमाज ने दो सभासदों का एक डैपुटेशन संयुक्तप्रान्त में भेजने का निश्चय किया। इस काम के लिये भाई जवाहरसिंह साहिब मंत्री, आर्यसमाज, लाहौर (जो उस समय आर्यसमाज के उत्तम वक्ता समझे जाते थे) और मुझे नियत किया गया। सबसे पहले हम सहारनपुर जाकर ठहरे। जिस समय मैंने व्याख्यान देना शुरू किया केवल तीन आदमी उपस्थित थे। धीरे धीरे लगभग ५० के हो गये।

इसी तरह मेरठ शहर में भी काम किया। वहां से हम फ़र्रुख़ाबाद गये। वहां के आर्यसमाजियों ने हमारी बहुत आव-भगत तथा सेवा-टहल की। इसी समय फ़र्रुख़ाबाद में मैंने अनुभव किया कि 'नमस्ते' में क्या असर है। उस समय 'नमस्ते' एक जादू का काम करता था। और आर्य-समाजी एक दूसरे से बहुत मुहब्बत करते थे। इस दौरे में साधारणतः, मगर फ़र्रुख़ाबाद में विशेषतः आर्यसमाज के महत्त्व के सम्बन्ध में मेरा विचार दृढ़ हो गया। इस दौरे से वापिस आकर मैंने लगभग ८ महीने तक आर्यसमाज का कुछ काम नहीं किया। परन्तु जनवरी सन् ८३ में मेरी और

पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज जी की सलाह से दो समाचार पत्र जारी हुए। इन में एक का नाम Regenerator of AryaVart रीजनरेटर ऑफ़ आर्यावर्त और दूसरे का नाम देशोपकार था।

यह दोनों नाम मैंने ही चुने थे। ख़याल यह था कि अंगरेज़ी के समाचारपत्र को पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज जी चलावेंगे और उर्दू के समाचारपत्र का सम्पादन मैं करूंगा। पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज ने अंगरेज़ी समाचार पत्र को लगभग दो साल तक चलाया। परन्तु देशोपकार के वास्ते मैं कुछ न कर सका क्योंकि मुझ को फ़ौरन् ही जीवन-निर्वाह के वास्ते मुख़्त्यारी का काम जारी करना पड़ा।

मैं बयान कर चुका हूं कि जिस समय मैं बच्चा था मेरे पिता मुसलमानी विचार रखते थे, और मेरी माता पौराणिक हिन्दू विचार रखती थी। मेरे पिता ने मुझे भी .कुरान का कुछ हिस्सा पढ़ाया था। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मैं नमाज़ भी पढ़ता रहा और कभी कभी मैंने रमज़ान में रोज़ा रखने का भी यत्न किया।

चौदहवें साल में जब मैं पहली बार शिक्षा के लिये लाहौर आया तो मेरी भेंट पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री से हुई। पण्डित शिवनारायण उन दिनों पञ्जाब ब्रह्मसमाज

के नेताओं में गिने जाते थे।

वह एक पत्रिका "बिरादरे हिन्द" निकाला करते थे, जिस में मेरे पिता प्रायः हिन्दू धर्म तथा आर्यसमाज के विरुद्ध लेख लिखा करते थे, मेरे पिता ने चलते समय मुझे एक पत्र पंडित साहब के नाम दिया। पंडित साहब उन दिनों लाहौर के ज़िला स्कूल में, ड्राइंग मास्टर (Drawing master) आलेखाध्यापक भी थे। उसी स्कूल में प्रवेश करने के कारण मुझे उनसे एक विद्यार्थी की स्थिति से भी वास्ता पड़ा। इस दफ़ा मैं लाहौर में केवल दो मास के लगभग ठहरा और मौसम गर्मी की छुट्टियों में जब मैं वापिस अपने पिता के पास गया तो फिर लाहौर नहीं आया किन्तु छुट्टियों की समाप्ति पर देहली चला गया। दूसरी दफ़ा जब मैं १८८१ में शिक्षा प्राप्ति के लिये लाहौर आया तो मैं पंडित साहब से कई दफ़ा मिला। उन दिनों ब्रह्मसमाज में दो दल हो चुके थे। लाहौर का ब्रह्मसमाजमंदिर बाबू केशवचन्द्रसेन के पक्ष वालों के हाथ में था। पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री ने उनसे अलग होकर एक और ब्रह्मसमाज स्थापित की थी जो ब्रह्ममंदिर के समीप एक किराये के मकान में हुआ करती थी, पंडित साहब बहुत अच्छे व्याख्याता थे और उन दिनों उनके व्याख्यानों में बहुत भीड़ रहती थी। मैं उनसे प्रायः मिला करता था और वह मुझसे ब्रह्मधर्म की चर्चा किया

करते थे। उनके कहने से मैं उनकी ब्रह्मसमाज का मैम्बर बन गया। उस समय पञ्जाब ब्रह्मसमाज के ट्रस्टी, मैडिकल कॉलिज के हैड क्लार्क लाला गंडामल, जंगल के महकमे के लाला रलाराम, तथा लाला काशीराम साहब थे। अब मंदिर के ट्रस्टियों के वार्षिक चुनाव का समय आया तो पंडित अग्निहोत्री ने जो अभी तक पंजाब ब्रह्ममंदिर के भी मैम्बर चले आए थे अपने पक्ष में अधिक सम्मतियां लाने की कोशिश की और मुझे अच्छी तरह याद है कि इस अभिप्राय से उन्होंने बहुत से नए मैम्बर पंजाबब्रह्मसमाज के बनाए।

उन्होंने मेरे पिता से भी मैम्बरी का फ़ार्म मँगवाया और उनसे प्राक्सी (उनकी ओर से सम्मति देने का अधिकार) अपने नाम ले लिया। विरोधी दल में लाला गंडामल का प्रभाव मैडिकल कॉलिज में बहुत था। उनके कहने से मैडिकल कॉलेज के बहुत विद्यार्थी मैम्बर हो गये और चुनाव में अधिक सम्मतियां उनके पक्ष में रहीं। इसी बीच पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री की पहली पत्नी का देहान्त हो गया और वह बंगाल से एक बंगाली महिला लाये। लाहौर में आने के बाद शीघ्र ही इस बंगाली महिला को चेचक हो गई। उन दिनों पण्डित अग्निहोत्री के यहां मेरा आना जाना अधिक था इस लिये पंडित साहब की दूसरी पत्नी

की बीमारी के दिनों में मैंने उनकी खासी सेवा की और मैं एक रात या एक से अधिक रातों को उनके घर सोया और उनके बच्चों की देख भाल करता रहा। पंडित साहब को अपनी पहली पत्नी से अत्यन्त प्रेम था और उसके चरित्र का उन पर गहरा प्रभाव था। पंडित साहब प्रायः उसकी याद करके ठंडी सांसें भरा करते थे। पंडित साहब में इतने परिवर्त्तन कदाचित् न होते यदि उनकी पहली धर्म-पत्नी ऐसी जल्दी उनको विछोह का दुःख न दे जाती। वह सदा से भावुक रहे और उनको सदा इस बात की आवश्यकता रही कि कोई आत्मा प्रेम और चरित्र के बल से उन पर अपना प्रभाव रखे। जब मुझे पहले पहल उनके दर्शन हुए तब पुरुषों में बाबू नवीनचन्द्र रायसाहब का उन पर बहुत प्रभाव था और घर में उनकी पत्नी का। परन्तु दुर्भाग्य से यह दोनों प्रभाघ बहुत जल्द हट गये और लाहौर में कोई दूसरा मर्द या औरत ऐसा न रहा जो उनको वश में रख सकता। उन दिनों में पंडित साहब बहुत बड़े ईश्वर उपासक थे। प्रार्थना और उपासना में रोने लग जाते थे। उनकी वाणी और लेखनी में सदा से बल था। उनका व्याख्यान सुनकर मेरे दिल में, उनकी तरह एक उत्तम व्याख्याता बनने की उमँग पैदा हुई किन्तु जब तक मैं ब्रह्मसमाज का मेम्बर रहा मैंने कोई व्याख्यान नहीं दिया। केवल एक बार

राजाराममोहनराय के जीवन पर एक निबन्ध पढ़ा। जिस दिन पंडित अग्निहोत्री ने अपने समाज के वार्षिकोत्सव पर सन् ८१ या ८२ में मुझे नियमानुसार दीक्षा दी उसी दिन दीक्षा के बाद मैंने पहली बार आर्यसमाज के प्रधान लाला साईंदास के दर्शन किये।

लाला साईंदास उस दिन ब्रह्म समाज में आये हुए थे, और कार्यवाई की समाप्ति पर बाहर उस मेज के पास जहाँ पुस्तकें बिकतीं थीं उन्होंने मुझसे कुछ बातें कीं। मुझे वह बातें याद नहीं परन्तु इतना अच्छी तरह से याद है कि बह मेरे कृत्य को दया की दृष्टि से देखते थे। वह समझते थे कि यह बालक अज्ञान से इस जाल में फँस गया है इसका रास्ता दूसरी तरफ़ है।

कालिज के जीवन में, मेरी गहरी मित्रता और मुहब्बत मेरे सहपाठी लाला शिवनाथ और लाला छुट्टनलाल से थी। यह दोनों और लाला लक्ष्मीनाराण साहेब (जो अब बैरिस्टर हैं) देहली में मेरे मित्र बनगए थे। जब मैं लाहौर आया तो यह साहब भी लाहौर में शिक्षा के लिये आये और उसी अहाते में रहने लगे जहाँ मैं रहता था। यह देहली वाले समझे जाते थे। पंजाबी विद्यार्थियों में सबसे मेरी मित्रता लाला चतुर्भुज से हुई जो इस समय अमृतसर के वकीलों में बहुत ऊँचे और योग्य समझे जाते हैं। मगर मेरे

विद्यार्थी जीवन में समय स्मरणीय बात वह सम्बन्ध है जो मेरा पंडित गुरुदत्त और लाला हंसराज से पैदा हुआ। पंडित गुरुदत्त अपनी कक्षा में उच्च थे। पंजाब युनिवरसिटी की परीक्षा में वह प्रथम तो नहीं किन्तु बहुत ऊँचे नम्बर पर पास हुए थे।

हमारे परलोक वासी मित्र लाला चेतनानन्द (वकील मुलतान) प्रथम नम्बर पर पास हुए थे और मेरे मित्र लाला शिवनाथ (इंजिनियर) तीसरे नम्बर पर, पण्डित गुरुदत्त कदाचित् चौथे, या उसके लगभग थे। दर्जे में उनकी बराबरी लाला सूरजनारायण मेहर से थी।

लाला सूरजनारायण फ़ारसी उर्दू अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञान में बहुत योग्य थे, और वैसे भी हरतरह तीव्रबुद्धि और बहुत परिश्रमी और पढ़ने वाले थे। इसके विरुद्ध पण्डित साहब का विस्तृत ज्ञान, उनकी स्मरणशक्ति और उनकी बुद्धि ऐसी ऊंची श्रेणी की थी कि बहुत शीघ्र वह अपने साथियों में नेता समझे जाने लगे।

गुरुदत्त और चेतनानन्द पहिले से आर्य समाज में आया जाया करते थे। लाहौर में आते ही उन्होंने आर्यसमाज से गहरा सम्बन्ध पैदा किया। गुरुदत्त की कार्य शैली आरम्भ से ही बहुत विस्तृत थी।

भाषाओं में वह अंगरेजी, फ़ारसी, अरबी, उर्दू संस्कृत

जानते थे। शास्त्रों में वह गणित का ऊँचा ज्ञान रखते थे। पदार्थ विज्ञान से तो उनको विशेष प्रेम था किन्तु तत्त्व ज्ञान और इतिहास तथा धार्मिक साहित्य इत्यादि की भी उनको बहुत जानकारी थी। उनका रहन सहन न केवल सादा था बल्कि विचित्र था। हमारी कक्षा को इकट्ठे हुए अधिक समय नहीं हुआ था कि उनकी योग्यता और ज्ञान की प्रसिद्धि होगई। इसके अतिरिक्त उनके काम और उनकी आदतें ऐसी विचित्र थीं कि लड़कों का ध्यान आप से आप खींचती थीं। वह सदा असाधारण कामों का करना पसन्द करते थे। कभी कभी लोग उनसे प्रश्न भी करते थे किन्तु उनकी योग्यता के कारण अधिक पूछताछ न करते थे। इसी कारण से मैंने उनके जीवन का संग्रह किया है।

यहाँ पर अधिक लिखा आवश्यक नहीं, केवल इतना ही काफ़ी है कि उनसे मेरी बहुत दोस्ती होगई। वह और लाला हंसराज गहरे दोस्त थे और उनके सबब से मेरी जानकारी और दोस्ती लाला हंसराज से हो गई।

परलोकवासी ला० साईंदास जी उन दिनों लाहौर आर्यसमाज के प्रधान थे। मनुष्य पहचानने वाले वयोवृद्ध सज्जन थे और वह प्रायः शिष्यों की खोज में बोर्डिङ्ग हाऊस में आया करते थे, जहाँ पंडित गुरुदत्त रहते थे।

गुरुदत्त के अतिरिक्त और भी आर्य समाज से सहानु-

भूति रखने वाले, तथा नियमानुकूल सदस्य कॉलिज के बोर्डिङ्ग हाऊस में रहते थे, लाला केशवदास बी. ए. (एकस्ट्रा असिस्टैंएठ कमिश्नर) और लाला चेतनानन्द भी उनमें थे। पहले साल तो मैं अपनी परीक्षा की तैयारी में अधिक लगा रहा और इसलिये मैंने पंडित गुरुदत्त की संगत से बहुत लाभ नहीं उठाया, किन्तु दूसरे वर्ष में प्रायः उनके साथ रहने लगा। उर्दू हिन्दी की बहस में, मैं और वह तथा लाला हंसराज इकट्ठे थे। यह कहना चाहिए कि हमारे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ उर्दू हिन्दी की बहस से हुआ।

मैंने और पंडित गुरुदत्त ने सहस्रों विद्यार्थियों से मैमोरियल पर हस्ताक्षर कराए। मैंने अम्बाला जाकर एक वक्तृता दी जिसमें देहली के प्रसिद्ध विद्वान् राय हुकुमचन्द एम्. ए. उपस्थित थे। वह हिन्दी के विरोधी थे और उस समय पंजाब में एकस्ट्रा असिस्टैंएट कमिश्नर थे। उन्होंने मेरे सम्बन्ध में डाक्टर साहब को जो कॉलेज के प्रिंसिपल थे, लिखा। प्रिंसिपल साहब ने मुझसे पूछताछ की और मुझे समझाया कि विद्यार्थियों को किसी सार्वजनिक आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहिए।

यह घटना सम्भवत अप्रैल अथवा मई १८८२ की है। १८८२ के आरम्भ में मेरी गहरी मित्रता पंडित साहब से हो गई थी। उनकी मित्रता का एक परिणाम यह था कि

मेरे विचारों में से राष्ट्रीयता की महक आने लगी। बचपन में मुसलमानी विचारों से पोषित आत्मा, जिसने जवानी के आरंभ में ब्रह्मसमाज की साया ढूंढ़ी थी। गुरुदत्त और हंसराज की संगत में प्राचीन हिन्दू सभ्यता से प्यार करना सीखने लगी। पण्डित गुरुदत्त जॉनस्टुअर्ट मिल (John Stuart mill) और बैन्थम (Bentham) के बहुत प्रेमी थे। उनकी संगत में मैंने भी इन विद्वानों के विचारों को पढ़ा।

उनसे मेरे विचारों में विस्तार आने लगा, इस के अतिरिक्त लाहौर में आकर, प्रायः समाचारपत्रों के पढ़ने का अवसर मिला। मगर सबसे ज़ोरदार असर मेरे चरित्र पर उर्दू हिन्दी के आन्दोलन का हुआ। इस आन्दोलन ने मेरे हृदय में जातीय प्रेम का उद्वेग पैदा कर दिया। मैंने संस्कृत भाषा की प्रशंसा में, व्याख्यान सुने और उस के सम्बन्ध में कुछ पढ़ा। बाबू नवीनचन्द्र राय साहिब के प्रभाव से पञ्जाब का ब्रह्मसमाज हिन्दी के पक्ष में था। उन की इस राय की जड़ में राष्ट्रीय विचार थे।

वह हिन्दी को कुल हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा समझते थे। और चाहते थे कि भारतीय राष्ट्रीयता की इमारत उस पर बनाई जावे। इन विचारों ने मेरे दिल पर गहरा असर किया और यह मेरे सार्वजनिक जीवन का

आरम्भ था। गुरुदत्त और हंसराज से मैं प्रायः आर्यसमाज के सम्बन्ध में सुना करता था। वह ब्रह्मसमाज पर हंसी उड़ाते थे कि यह लोग बाईबल पर बहुत भरोसा करते हैं। यह वह समय था जब कि बाबू केशवचन्द्रसेन की पैगम्बरी की चर्चा थी। ब्रह्मसमाज के अधिवेशनों में, व्याख्यानों तथा लेखों में हज़रत मसीह और बाइबल की बहुत अधिक चर्चा आती थी।

---

(६)

आर्य समाज में विशेष कार्य

लगभग आठ मास तक मैंने आर्यसमाज के लिये कोई काम नहीं किया। सितम्बर सन् १८८३ ई. में वकालत की परीक्षा की तय्यारी के लिये लाहौर आया और स्वर्गीय मदनसिंह के साथ रहने लगा। स्वर्गीय लाला साईंदास कई बार समाज के जलसे के बाद मुझे अपने मकान पर ले जाते और घण्टों मुझसे बात करते थे।

अक्टूबर में स्वामी दयानन्द जी की बीमारी का समाचार लाहौर में पहुंचा और लाहौर आर्यसमाज ने स्वर्गीय लाला जीवनदास और पंडित गुरुदत्त को स्वामी जी की सेवा शुश्रूषा के लिये अजमेर रवाना किया। उस साल

३० अक्तूबर को दिवाली थी। शाम को मैं लाला साईंदास और ला० मदनसिंह के साथ दीवाली देखने को निकला उस समय वह उदास थे, क्योंकि उन को दिन में ख़बर मिली थी कि स्वामी जी की बीमारी ख़तरनाक है । और डर है कि वह बच न सकें । हम को इस चिन्ता और शोक में दीवाली का कुछ लुत्फ़ नहीं आया और हम उदास ही घर को वापिस आए । अगले दिन तीसरे पहर को मैं पढ़ रहा था कि किसी लड़के ने गहरीस्याहधारियों में छपा हुआ एक परचा मेरे हाथ में दिया । इस में लिखा समाचार पढ़ते ही मेरे हाथों से किताब गिरगई । सायंकाल लाहौर आर्यसमाज के मंदिर वच्छोवाली में बिना किसी नोटिस और विज्ञापन के लोगों का भारी जमाव इकट्ठा हो गया और यह निश्चय हुआ कि अगले दिन लाहौर आर्यसमाज की ओर से एक शोक सभा की जाय। लाला साईंदास जी ने इस सभा के लिये मुझे मुख्य वक्ता निश्चित किया । मैंने वापिस आकर रातभर बैठकर एक व्याख्यान तैयार किया। अगले दिन शामको लाहौर आर्यसमाज मन्दिर में आदमी ही आदमी दिखाई देते थे । मौसम सरदी की थी, मगर गरमी के मारे जान निकली जाती थी । सैंकड़ों आदमी स्थान न होने के कारण वापिस चले गये ।

छतों पर भी बड़ी संख्या में आदमी ही आदमी

दिखाई देते थे। एक व्याख्याता के बाद दूसरा व्याख्याता उठता था, मगर नाकामयाब रहा। मैंने लगभग एक घण्टे तक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान ने मेरा सिक्का बिठा दिया। इस व्याख्यान ने आर्यसमाज के प्रथम कोटि के व्याख्याताओं में मेरी जगह क़ायम करदी।

स्वामी दयानन्द की मृत्युने मेरे दिल पर इतना सद्मा पहुँचाया और मैं इतनी चिन्ताओं में डूब गया कि निश्चिन्त होकर कानूनी किताबें न पढ़ सका। इस पर परीक्षा भी बहुत कठिन हुई। उस साल वकालत की परीक्षा में ६५ परीक्षार्थी थे, जिनमें से केवल पाँच उत्तीर्ण हुए और बाकी साठ अनुत्तीर्ण हुए। उस दिन से आर्यसमाज ने मेरे जीवन में मुख्य स्थान ग्रहण किया। सन् १८८४ ई० में मैं जगराँव से रोहतक चला गया, जहाँ पर मेरे पिता स्कूल में अध्यापक थे। वहाँ मैं अपनी जीविका कमाने के बाद वकालत की तय्यारी करता था। मगर साथ ही रोहतक की आर्यसमाज के मंत्री की हैसियत से समाज का काम बहुत दिलचस्पी से करता था। आर्यसमाज मेरे जाने से पहले स्थापित थी मगर बहुत कमज़ोर हालत में थी। इस बार फिर मैं वकालत की परीक्षा में तीन नम्बर की कमी से फ़ेल हो गया। इनदिनों पास होने के लिये प्रत्येक विषय में ६०—१०० नम्बर और कुल मिलकर ६६—१०० नम्बर पाने की आवश्यकता थी।

६५ परीक्षार्थियों में से केवल १० पास हुए। इस असफलता से मुझे बहुत खेद हुआ क्योंकि मुख़्तयारी की हैसियत में जो अपमान मुझे उठाना पड़ता था वह मेरे लिये असह्य था। अपने पिता के कहने से मैंने एक बार फिर भाग्य की परीक्षा करने का संकल्प किया मगर आर्यसमाज के काम में कभी बेसुधी नहीं की। १८८५ ई० में मैंने रोहतक में दयानन्द-कॉलेज के लिये चंदा जमा करके भेजा और दिसम्बर में फिर परीक्षा में सम्मिलित हुआ। इस बार भी परीक्षा कठिन हुई और इसके अतिरिक्त उस समय यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि रजिस्ट्रार बिना रिश्वत के किसी को पास नहीं करता।

दयानन्द-कॉलेज क़ायम करने की तजवीज़ १८८३ ई० में हो चुकी थी। मैं उन दिनों लाहौर में ही था और तमाम जलसों और निजी कमेटियों में शामिल रहता था। १८८४ और १८८५ ई० में उसके लिये चन्दा जमा होता रहा। मगर कॉलेज खोलने के लिये काफ़ी रक़म जमा न हुई। दिसम्बर और जनवरी १८८६ ई० में मैं प्रायः लाला हंसराज और पं० गुरुदत्त से मिला करता था और सदा हमारी बात-चीत कॉलेज और समाज पर होती थी। समाज और कॉलेज को हम अपनी देशभक्ति और जातिभक्ति का केन्द्र बनाना चाहते थे। इस लिये एक बार लाला हंसराज ने और मैंने

एक व्यवस्था बनाई कि हम दोनों दयानन्द कॉलेज का स्कूल विभाग खोलने के लिये अपनी सेवा अर्पण करें। वह हैडमास्टर का काम करें और मैं सैकण्डमास्टर का। रुकावट केवल इतनी थी कि वह तो बी. ए. थे मगर मैंने एण्ट्रैन्स के सिवाय युनिवर्सिटी की कोई परीक्षा नहीं दी थी और संदेह था कि मेरी सेवा कुछ मूल्यवाली न समझी जायेगी।

मैं मुख़्त्यारी से भी लगभग २००) मासिक कमाता था; और अपनी आय के अनुसार अपनी हैसियत रखता था। मेरी योग्यता और शिक्षा का अध्यापक ३०) या ४०) में मिल सकता था। इस कारण से मुझे संदेह था कि अगर मैंने अध्यापकी के लिये अपनी सेवा अर्पण की तो वह किसी अर्थ में आदरणीय न समझी जावेगी। किन्तु मैं मुख़्त्यारी से इतना दुःखित और समाज की सेवा का इतना प्रेमी था कि मैंने फिर संकल्प किया कि चाहे कुछ ही समझा जावे मैं मुख़्त्यारी न करूँगा।

दूसरी कठिनता यह थी कि लाला हंसराज को गुज़ारा देने का इक़रार उनके भाई ने किया था; मगर मुझे कोई गुज़ारा देने वाला न था। मेरे माता-पिता ने बहुत कष्ट से मुझे शिक्षा दी थी और अब वह मेरी कमाई से ही दूसरे बच्चों की शिक्षा में सहायता की आशा करते थे। इन

विचारों ने मुझे बहुत चिन्तित किया और मैं रातों और दिनों रोया करता था। एक दिन गुरुदत्त ने मुझे रोते पकड़ लिया और मुझे बहुत प्यारी धिक्कार दी। परन्तु मेरे भाग्य में यह न लिखा था कि मैं अध्यापकी करूँ।

मैंने गुरुदत्त की सम्मति से २००) खर्च करके यह मालूम कर लिया कि मैं परीक्षा में पास होगया हूँ। इस समाचार ने मेरे विचार को बदल दिया और मैंने गुरुदत्त और हंसराज की सलाह से स्कूल में अध्यापकी का काम करने का विचार छोड़ दिया। हम सब इस परिणाम पर पहुँचे कि व्यक्तिगत सेवा के स्थान में, कदाचित् मैं रुपये से संस्था की अधिक सहायता कर सकूं।

१८८६ ई० से १८९२ ई० तक

१८८६ ई० से अप्रैल १८९२ तक मैं हिसार में वकालत करने के साथ साथ काम करता रहा। मेरे जाने के बाद और मेरे सामने वहाँ पर आर्यसमाज की नींव पड़ी। इन पाँच सालों में मैंने हिसार के वकील पण्डित लखपतराय और हिसार के साहूकार लाला चन्दूलाल और हरिलाल की सहायता से एक बहुत अच्छी रक़म रुपये की जमा करके कॉलेज के चन्दे में भेजी और दूसरी तरह से भी समाज को दृढ़ किया। यहाँ तक कि यह समाज इस समय सूबा की सुदृढ़ और अच्छी समाजों में गिनी जाती है। ज़िला की

जनता में और विशेष कर हिसार, रोहतक और देहली के ज़िलों में आर्यसमाज के विचार का और साधारण जाति-हित का विचार पैदा करने में जो सफलता इस समाज को हुई है वह सूबा भर में अपनी समता नहीं रखती। हिसार आर्यसमाज उन समाजों में से है जिन्हों ने इस बात का अनुभव किया है कि जब तक शिक्षित और अशिक्षित समुदायों में हृदय की सहानुभूति और गहरा सम्बन्ध न हो सुधार का काम नहीं हो सकता, और उससे काफ़ी अच्छे नतीज़े नहीं निकल सकते। आर्यसमाज की सफलता का एक मंत्र यह है कि वह सुधार और उन्नति के काम को केवल शिक्षित समुदाय तक परिमित नहीं रखना चाहती, और ऐसे उपाओं द्वारा काम करती है जो सर्व साधारण और अशिक्षित हिन्दुओं को हृदयग्राही होते हैं। हिसार आर्यसमाज ने इस विषय में बहुत अमली और बहुत फैला हुआ काम किया है। इस बात का श्रेय जिन आदमियों को है उनकी इस अवसर पर संक्षेप से चर्चा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

सबसे पहले मैं परलोकवासी लाला चंदूलाल आर्य-समाज के प्रधान का उल्लेख करता हूँ। लाला चन्दूलाल जी हिसार के एक बहुत आदरणीय घराने के रत्न थे। जाति के अग्रवाल बनिये थे। उनके दादा लाला रामजीदास बिलकुल

असाधारण प्रकृति के आदमी थे। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने जब पहली बार क़ाबुल पर चढ़ाई की थी उस समय लाला रामजीदास और उनके भाई इत्यादि कमिसारयट विभाग में गुमाश्ता और ख़ज़ानची थे और उन्हों ने उस समय बहुमूल्य सेवाएं की थीं। उसके बाद वह ज़िला हिसार के बहुत दिन तक खज़ानची रहे। परन्तु एक बार उनके नौकर की असावधानी से ख़ज़ाने में कुछ हानि हुई; और लाला रामजीदास को कुछ कष्ट उठाना पड़ा। उस दिन से उन्होंने निश्चय कर लिया और मरते दम तक इस निश्चय पर दृढ़ रहे कि सामयिक सरकार के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना। लाला रामजीदास धार्मिक और सामाजिक विचारों में बहुत उदार थे। पौराणिक-धर्म को वह मानते न थे और मूर्तिपूजा के पक्ष में न थे। सामाजिक विचारों में तो बहुत ही उदार और साहसी थे। बिरादरी और नगर के लोगों की स्थिति तथा विचार धारा से ऊँचे होकर, उन्होंने अपने कुल में ऐसे सामाजिक सुधार किये जो उस समय उस हैसियत के आदमी से होने असम्भव थे। लाला रामजीदास में कुछ गुण वीरता के थे। दूसरों की सम्मतियों को वह बहुत तुच्छ समझते थे। जिसको वह दुरुस्त समझते थे इसके करने में उनको कभी रुकावट नहीं हुई। अपने हठ और अपनी धुन के पक्के थे। अपनी बात के मर्द

थे। उदार थे, साहसी थे। वह सरकार के बड़े दरबारी थे मगर कभी दर्बार में न जाते थे। एक दफ़ा जब दरबार के लिये बुलावा कुछ विशेष चेतावनी के साथ आया तो उन्हों ने दरबारीपन से त्यागपत्र लिखकर भेज दिया। उनके पोतों ने और उनके भतीजे ने कई दफ़ा उनसे कहा कि वह अपने स्थान पर उनको दरबारी बनवादें; परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया और अपने बच्चों को यही सलाह देते रहे कि अफ़सरों से अलग रहना ही अच्छा है; और पास जाना अनुचित और आत्म सम्मान के विरुद्ध है। मेरे हिसार में आने के बड़े कारण लाला रामजीदास थे। उन दिनों उनका एक मुक़द्दमा गवर्नमेंएट से चल रहा था। उसके लिये उन्होंने रोहतक से मुझे बुलाया। मैं भी उन दिनों वकालत के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में था। जब मैं हिसार आया तो मैंने अपने काम के लिये वहां अच्छा क्षेत्र पाया और इस लिये वहां ही वकालत करने लगा। लाला रामजीदास प्रायः मेरे पास आया करते थे और मुझ से कहा करते थे कि मेरे दिल में नये शिक्षित समुदाय के लिये आदर और विश्वास नहीं। उन लोगों का चारित्र बहुत नर्म और कमज़ोर है। मगर इतना होने पर भी उनको मुझ पर अत्याधिक विश्वास था। मेरे हिसार आने से पहले ही उनके कुल में आर्य-विचारों का प्रवेश हो चुका था। आर्य

सिद्धान्तों को तो वह मानत न थे किन्तु उदार विचारों के कारण आर्य प्रसिद्ध थे।

---

(७)

हिसार में समाज का कार्य

जब मैं हिसार पहुंचा तो वहाँ पर संस्कृत के एक विद्वान् पण्डित गंगासहाय थे। यह पण्डित जी वेदान्ती विचारों का प्रचार किया करते थे। उन्होंने एक सभा भी बना रखी थी। कुछ समय तक तो मैं और मेरे दोस्त पं० लखपतराय और बाबू चूड़ामणि इस सभा में जाते रहे। अन्त में हमने निश्चय किया कि नियमित रीति से आर्य-समाज स्थापित की जाय। फिर ऐसा ही किया गया। लाला रामजीदास के पौत्र लाला चन्दूलाल को जो शहर में अपनी बुद्धिमानी, सार्वजनिक कामों में प्रेम और सहानुभूति के विचारों से प्रसिद्ध आदमी थे, इस समाज का प्रधान बनाया गया और मुझे उसका मंत्री। लाला चन्दूलाल अपनी मृत्यु तक उस समाज के प्रधान रहे और १८८६ ई० से लेकर १९०६ ई० तक, जब उनका देहान्त हुआ, मेरे मित्र रहे। लाला चन्दूलाल का आचरण बहुत ऊँचा और दृढ़ था। वह भी अपने दादा के समान बात के पक्के थे और बहुत उत्साही और साहसी पुरुष थे। लोगों के झगड़े अपने सिर पर लेते थे।

मुझे कभी ऐसा अवसर देखने या सुनने में नहीं आया कि किसी मनुष्य ने अपनी किसी मुसीबत में लाला चन्दूलाल से सहायता मांगी हो और उन्हों ने इनकार किया हो। वह अपने शहर और अपने ज़िला में प्रत्येक आदमी के सलाहकार थे। लोग मुक़द्दमों में उनकी सहायता ढूंढ़ते थे। अपने बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में उनसे सलाह लेते थे। धर्म, चिकित्सा और सामाजिक तथा मुल्की विषयों के बारे में उन से चर्चा करते थे। उनकी शिक्षा बिलकुल मामूली थी। थोड़ीसी संस्कृत, अच्छी हिन्दी और मामूली उर्दू जानते थे। हिन्दी गणित में बहुत चतुर थे। व्यापार चलाने और हुण्डी चिट्ठी के मामलों में उनकी राय माननीय समझी जाती थी। जायदाद और खेती के प्रबन्ध में प्रसिद्ध थे। अपने कुटुम्ब में तीन परिवारों के मुखिया थे। स्वाभाविक बुद्धि का अच्छा भाग उनको मिला था। हर बात की तहको बहुत जल्द पहुँच जाते थे और हर मामले में उनकी रुचि बुद्धिमानी की होती थी। दोस्त बड़े पक्के थे। धनाढ्य के पुत्र थे। रहन सहन और खर्च में अमीर थे। तिस पर उनका सामाजिक चरित्र बहुत ऊँचे दर्जे का था। किसी समय में थोड़ा बहुत ऐश भी करचुके थे। मगर जब से मुझ से दोस्ती हुई ऊँचे दर्जे के सदाचारी रहे। अमीर होते हुए भी लोगों के काम आना और उनके दुःखों में शामिल होना उनका स्वभाव

था। लोगों को न केवल औषधियें (जो कभी कभी बहु मूल्य होती थीं) बिना मूल्य देते थे। बल्कि मैंने कई दफ़ा देखा कि रात को लोगों ने उनको सोते हुए जगाया और वह उठ कर बीमार देखने के लिए उसके साथ हो लिए। दिन रात में हर समय मुस्तैद रहते थे। परमात्मा ने उस व्यक्ति को विचित्र-गुणों का समूह बनाया था। मेरा विश्वास है कि अगर वह अच्छी शिक्षा पाते तो मुल्क के प्रसिद्ध नेताओं में उनकी गणना होती। फिर भी अपने परिचित क्षेत्र में वह सब से प्रभावशाली और लोकप्रिय नेता थे। एक दफ़ा जब एक मुसलमान डिपटी कमिश्नर से उनकी तकरार हो गई तब जो कमिश्नर साहब तहकीकात के लिये आए उन्होंने उनसे कहा कि "तुम ज़िला के राजा हो।" इस में एक तरह का ताना था; मगर साथ ही उनकी शक्ति उनके बल और उनकी लोकप्रियता का सार्टीफ़िकेट भी था। वर्ष से अधिक उन्होंने आर्य समाज की सेवा की और अपना तन मन धन उस पर न्यौछावर किया जिसका एक परिणाम यह हुआ कि हिसार आर्य समाज अपने कार्यक्षेत्र में एक बड़ी शक्ति हो गई!

लाला चन्दूलाल राजनीति में भाग नहीं लेते थे। किन्तु वह राजनीति की चालें समझते थे और जब कभी उनके सामने कोई राजनीतिक चर्चा होती थी तो वह उसको अच्छी तरह समझते थे। वह अपने ज़िला के हाकिमों से अच्छी

बनाए रखते थे। मगर जब से वह आर्यसमाज के नेता बने ज़िला के हाकिमों के दिल में उनकी तरफ़ से खटका रहा। १६०७ ई० में जब गवर्नमेंट ने मुझे देश से निकाला तब वह परीक्षा में पूरे उतरे। ज़िला के हुक्काम को मालूम था कि वह मेरे दोस्त हैं। उन्होंने कभी मेरी दोस्ती से इनकार नहीं किया और दो साल तक मेरे कुल कागज़ पत्र उनके मकान में पड़े रहे। हाकिमों से वह सदा यह कहते रहे कि मैं लाजपतराय का दोस्त हूं और मैं उनको निर्दोष समझता हूं। ऐसे समय में जब कि मेरे अगणित मित्रों ने मेरा साथ छोड़ दिया, लाला चन्दूलाल मेरे साथ रहे। देश निर्वाचन से लौटने के बाद कई बार मैं उनके पास जाकर ठहरा। वह मेरे साथ यात्रा करते थे। मैं देहरादून में उनके साथ तीन सप्ताह तक रहा। जिन दिनों मैं मांडले में बन्दी था उन दिनों में भी उन्होंने मझ से पत्र व्यवहार रखा। यह वह समय था जब कि मेरे कुछ गहरे मित्र मुझ से तटस्थ हो गये थे और मेरा साथ छोड़ दिया था। अमीर रईस, सरकारी नौकर और उपाधिधारी तो मुझ से कोसों भागते थे। किन्तु लाला चन्दूलाल साहस से खुले तौर पर मेरी दोस्ती का दम भरते रहे। हिसार समाज की उन्नति और लोकप्रियता में इस व्यक्ति के आचरण बुद्धिमानी और उदारता का बहुत बड़ा भाग है। हिन्दुओं की आनेवाली पीढ़ियां, जो जातीय मन्दिर इन महापुरुषों के लिए बनावेंगी,

जिन्होंने उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में हिन्दू जाति की रक्षा की और अपनी श्रद्धा और त्याग से अपने पूर्वपुरुषों के धर्म और कीर्ति की, न केवल रक्षा की, किन्तु उनका मान बढ़ाया, और जिन्होंने देश और जाति को अपने हृदय सिंहासन पर बैठाया; उन में स्वर्गीय लाला चन्दूलाल आदर का स्थान पावेंगे। लाला चन्दूलाल जन्म से बनिये थे। परन्तु आचरण और स्वभाव से उनमें कुछ गुण ब्राह्मणों के थे। और उत्साह तथा वीरता में वह पूरे क्षत्रिय थे। हिन्दुओं के तीनों उच्च वर्णों के गुणों के वह समूह थे। मेरे हृदय में उनके लिये बड़ा आदर है। अपने जीवन में मुझे जितना शोक उनकी मृत्यु पर हुआ थोड़े ही अन्य लोगों की मौत पर हुआ। देवता समान स्वर्गीय बालमुकुन्द, जिन्होंने कई वर्ष बिना वेतन लिए अपने खर्च पर दयानन्द कालेज की सेवा की, लाला चन्दूलाल के छोटे भाई थे। उनके दूसरे भाई लाला हरिलाल हिसार की आर्य समाज के प्रधान हैं। जब लाला चन्दूलाल का देहान्त हुआ तब ज़िला के अगणित हिन्दू मुसलमान शोक करने आए। तब मैंने बीसियों की ज़बान से सुना कि हरियाना का सरदार चल बसा। हिसार हांसी और भिवानी के विभाग को हरियाना कहा करते थे। उस प्रदेश का यह ऐतिहासिक नाम है।

हिसार आर्यसमाज के सौभाग्य से उसको एक और

नेता वैसा ही ऊंचा मिला जैसे कि लाला चन्दूलाल थे। बल्कि कुछ अंशों में तो यह नेता पंजाब में अपना जोड़ नहीं रखता। लोगों के दुःख में, उनके कष्टों और मुसीबतों में सम्मिलित होने का जो गुण लाला चन्दूलाल में था उससे कई गुणा अधिक पं० लखपतराय में था। पण्डित लखपतराय अद्वितीय मनुष्य हैं। इस व्यक्ति की दृढ़ता, इसका प्रेम, इसकी मित्रता, इसको देवताओं के दरजे तक पहुंचा देती है। मैंने अपने जीवन में बीसियों मित्र बनाए। उनमें से कुछ की मित्रता का मुझे अभिमान है। अपने परिचितों की संख्या तो कदाचित् हजारों तक पहुँचती है। किन्तु अपने जीवन में मुझे आज तक ऐसा आदमी मुझे नहीं मिला जिसको स्वार्थ रहित प्रेम, निस्पृहता आत्मसंयम और त्याग में मैं पंडित लखपतराय के साथ एक ही तखड़ी में तौल सकूं। मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं जिनमें मैं इस व्यक्ति की प्रशंसा कर सकूँ। मेरे जीवन की अंधेरी से अंधेरी घड़ियां मेरे जविन के उदास से उदास अवसर इस व्यक्ति के प्रेम से प्रकाशित और दीप्त रहे।

उसने मुझे कभी जबाब नहीं दिया। इस समय दुनिया में मैं कोई ऐसा मनुष्य नहीं देखता जिसके साथ मुझे इतना प्रेम है और जिसके लिये मेरे हृदय में ऐसा आदर है जैसा कि पं० लखपतराय के लिये। पं० लखपतराय मेरे राजनैतिक

विचारों से सहमत नहीं हैं। वह स्वभाव से कुछ डरपोक हैं। मैं उनको कायर कहना नहीं चाहता और न वह कायर हैं। परन्तु उनका सब डर और भय अपने लिये नहीं किन्तु उस आन्दोलन (Movement) के लिये है जिसकी सेवा में उन्होंने अपने जीवन का सबसे अच्छा भाग लगाया है। उनकी सेवा से उनके अपने पास और दूर के सम्बन्धियों ने भी लाभ उठाया। ठीक शाब्दिक अर्थों में वह परिवार पोषक रहे। किन्तु उनकी सेवा का क्षेत्र उनके अपन सम्बन्धियों तक ही सीमित नहीं रहा। उन्होंने अपने मित्रों और परिचितों की भी सेवा की। परन्तु सबसे अधिक सेवा उन्होंने आर्यसमाज की की। आर्यसमाज के इतिहास में उनका नाम सदा चमकता रहेगा। यह काम ऐसे ऊँचे भाव से किया गया और इस तरह से निभाया गया कि मेरे विचार में प्रत्येक आर्ययुवक को उनका चित्र अपने गले में लटका लेना चाहिए। जिस में प्रत्येक परीक्षा के समय वह उसके काम आये और कार्यकर्ता युवक उनके चित्र को देखकर स्वार्थपरता, जातिद्रोह, असत्य व्यवहार और मिथ्या अभिमान के महापापों से बचा रहे। मैं मूर्तिपूजक नहीं और न मूर्तिपूजा का पक्षपाती हूँ। किन्तु आर्यसमाज के क्षेत्र में जिन व्यक्तियों ने यह आदर पाया है कि आगे आने वाली सन्तति उनकी मूर्तिपूजा करे; इनमें पं० लखपत-

राय सब से ऊँची श्रेणी में हैं। पं० लखपतराय आर्यसमाज के सबसे अच्छे और प्रसिद्ध सेवकों में से हैं। इनका जीवन बहुत सादा और इनका चरित्र बहुत ऊँचा है। आर्यसमाज के नेताओं में यदि कोई व्यक्ति है जिसने नाम और प्रसिद्धि की कभी परवाह नहीं की और जिसने औरों को अपने काम का श्रेय लेने दिया वह पं० लखपतराय और मेरे विचार में इससे अच्छी प्रशंसा मैं उनकी नहीं कर सकता।

हिसार आर्यसमाज के काम में पं० लखपतराय के छोटे भाई डाक्टर धनीराम ने भी अच्छा भाग लिया। उनकी बुद्धिमानी उनकी गंभीरता उनकी जानकारी तथा संस्कृत परिडत ने समाज के आन्दोलन को बहुत लाभ पहुँचाया। मगर हिसार, रोहतक और दिल्ली के प्रान्त में, आर्यसमाज के काम, और इसके सिद्धान्तों को फैलाने तथा लोकप्रिय बनाने में जिस व्यक्ति ने पवित्र आत्मा का काम किया वह डाक्टर रामजीलाल साहब हैं। सन् १८२४ ई० से, जबकि वह रोहतक के डिस्ट्रिक्ट स्कूल में मेरे पिता के शिष्य थे—मुझे उनकी मित्रता का अभिमान है। यह साहब जाट हैं। परमात्माने उनको ऐसा स्वभाव दिया है कि जहां जाते हैं लोकप्रिय हो जाते हैं। अपनी बिरादरी और जाति में तो वह अद्वितीय हैं। मैंने आजतक कोई अंगरेज़ी पढ़ा लिखा हुआ आदमी ऐसा नहीं देखा जो अपने अशिक्षित

भाइयों से ऐसी स्वतंत्रता और प्रीति से मिलता हो जैसे कि डाक्टर रामजीलाल। प्रायः देखने में आता है कि एक सभ्य शिक्षित सम्पन्न आदमी को एक असभ्य और अशिक्षित मैली आदत वाले ज़िमींदार से सामाजिक सम्बन्ध पैदा करने में बड़ी कठिनता होती है। मेरे देशवासी खूब जानते हैं कि दुकानदारों और ज़िमींदारों में हुक्का पानी" के क्या अर्थ हैं। सामाजिक सम्बन्ध में हुक्के का अच्छा ऊँचा भाग है। मुसलमान तो साधारणतया सबही एक दूसरे का हुक्का पीलेते हैं। किन्तु हिन्दू अपनी बिरादरी और कभी २ अपने कुटुम्ब की सीमा से बाहर वाले का हुक्का नहीं पी सकते। शिक्षित अच्छी हैसियत के बाबुओं के लिये, साधारण दुकानदारों और ज़िमींदारों का हुक्का पीना कठिन है। बाबू लोग बिरादरी वालों को अपना   ना पसंद नहीं करते। डाक्टर रामजीलाल को इस बारे में अपवाद-रूप में पाया है।

मैंने कई बार उनको जाटों के घेरे में उनका मैला कुचैला हुक्का पीते देखा है। हिसार में इनका घर उस प्रदेश भर के जाटों का केन्द्र था। लोग दूर दूर से उन से चिकित्सा कराने और आँखें बनवाने, तथा चीर फाड़ का काम कराने आते थे। बहुतों को वह खाना भी अपने घर पर से खिलाते थे। अपनी योग्यता चिकित्सा ज़र्राही और आतिथ्य

सत्कार से उन्होंने हज़ारों जाटों में अपने धर्म का प्रचार किया और अपनी बिरादरी वालों के हृदयों में, जाति हित और देशभक्ति का दीपक जलाया और उनके मनों में देश के प्रश्नों के सम्बन्ध में दिलचस्पी पैदा कर दी।

हिसार आर्य समाज के सेवकों में कुछ और नाम हैं जिनकी मैं संक्षेप से चर्चा करना चाहता हूं। इन में सब से ऊंचा दर्जा मैं पण्डित अमीचन्द को देता हूं। हिसार के जाटों में प्रचार के काम के लिए इन वृद्ध का अस्तित्व मानो एक ईश्वरी देन थी। अमीचन्द के भाव सच्चे ब्राह्मण के हैं और हिसार तथा रोहतक के ज़िलों में आर्यविचारों को लोकप्रिय कराने का काम जिस सुन्दरता से पण्डित जी ने किया इसको प्रकट करने में मेरी लेखिनी असमर्थ है। इस को प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त बाबू चूड़ामणि साहेब ने अनाथ बच्चों की रक्षा में जो यत्न किया वह भी प्रशंसनीय है। हिसार में आर्यसमाज स्थापित करने में और पहले पांच साल उसको पानी देने में जो हिस्सा मैंने लिया उसे अभिमान से याद रक्खूंगा। वह समय विरोध परीक्षा और धीरज तथा पोषण का था। सरदी गरमी में उसकी रक्षा की आवश्यकता थी। वर्षों तक समाज का साप्ताहिक अधिवेशन मेरे मकान में होता रहा। कई सप्ताह ऐसे बीत गए कि सिवाय मेरे और

मेरे मुंशी के और कोई समाज में नहीं आया । किन्तु मैंने समाज में कभी नागा नहीं किया । कई सप्ताहों तक स्वयं ही उपासना कराता रहा और आप ही उपदेश या लैक्चर देता रहा । नियमित मंत्री हिसार समाज का मैं केवल एक साल तक रहा, परन्तु जब तक मैं हिसार में रहा आर्यसमाज के काम का अधिक बोझ मेरे ऊपर रहा । हिसार आर्य समाज के वकील सभासद अपनी आय का एक प्रतिशत (शतांश) भाग प्रतिवर्ष गिनकर देते थे । अन्त में पांच साल के परिश्रम के बाद लाला चन्दूलाल के भाई लाला हरिलाल के हृदय में समाज मंदिर बनाने के लिये उत्साह पैदा हुआ । उन्होंने अपने भाई को समाज मंदिर के लिए एक मकान दान करने की प्रेरणा की । इसके लिए मैंने भी अपनी एक महीने की आय १५००) से अधिक भेंट की । औरों ने भी एक एक महीने की आय इसके लिए दान दी । इस समय हिसार आर्यसमाज के सदस्य थोड़े ही थे । हिसार आर्य समाज का सुन्दर मन्दिर लाला चन्दूलाल और उनके भाइयों की उदारता का फल है । महीनों वह स्वयं मकान बनने में देख भाल करते रहे और अपने पास से इसके लिए रुपया लगाते रहे । इस मंदिर के बनने से उनका आर्यसमाज के साथ इतना सम्बन्ध हो गया कि अन्त समय तक समाज उनकी आत्मा से दूर नहीं हुआ ।

(८)

राजनैतिक धुन

मैं हिसार में छः वर्ष रहा। इस समय से मैंने अपनी शिक्षा की कमी को पूरा करने का उद्योग किया। सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर तथा धर्म सम्बन्धी और साधारण साहित्य की बहुत सी पुस्तकें मैंने पढ़ीं। इस बीच मैंने कई बार संस्कृत पढ़ने का यत्न किया पर इस में मुझ को सफलता नहीं हुई। कारण यह था कि वकालत का धंधा इतना थका देता था कि दिन भर काम करने के बाद उतना ध्यान और लगाव नहीं हो पाता था जितना संस्कृत जैसी कठिन भाषा को सीखने के लिए आवश्यक है। अपने पेशे में काम और आमदनी दोनों ही के विचार से मैं प्रथम गिना जाता था। हिसार में मेरी आमदनी १७ हज़ार वार्षिक के लगभग पहुंच गई और कभी किसी वर्ष में भी जहां तक मुझे स्मरण है दस हज़ार से कम नहीं हुई। मैंने छः वर्ष में कम से कम ७० या ८० हज़ार रुपया पैदा किया होगा। सब से पहला काम तो मैंने यह किया कि अपने पिता को उनकी नौकरी से स्वतन्त्र करा दिया। उन्होंने मेरी वकालत के पहले ही साल में पेंशन ले ली और मैंने इतना धन उनको भेंट कर दिया कि जिसके व्याज से वह उमर भर आराम से जीवन व्यतीत करें और अपने बाल बच्चों का पालन कर सकें। यह धन केवल दूर-

दर्शिता और पूंजी रखने के विचार से उनको दे दिया गया था। वैसे तो सारे कुटुम्ब का व्यय (व्याह शादी और मेरे भाइयों की शिक्षा के व्यय सहित) मेरे सिर पर रहा। अर्थात् साधारण दैनिक व्यय के लिए उनको अपनी पूंजी का व्याज भी खर्च न करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त मैंने अपनी आमदनी का १० प्रतिशतक नियम पूर्वक अपनी जाति की सेवा के लिए व्यय किया। इस समय मैं समाज के लिए प्रायः बाहर जाता था, व्याख्यान देता था चन्दा जमा करता था और वे अन्य सेवायें भी करता था जो समाज के नेता मेरे सुपुर्द करते थे। समाचार पत्रों में लिखता भी था, राजनैतिक विषयों में भी रुचि रखता था। पढ़ने के रोचक काम में ज़िले के एक मुसलमान अंग्रेज़ी क्लर्क मीर महम्मद हसन मेरे साथी थे। मैं उनकी मित्रता को सदा प्रेम से स्मरण करता हूं। जब तक मैं हिसार रहा मेरा उनसे गहरा सम्बन्ध रहा। यहां तक कि कई बार मैंने उनकें यहां खाना खाया और वह मेरे यहां प्रायः खाया करते थे, और मेरी किताबें पढ़ा करते थे। अन्तिम तीन वर्षों में मैं हिसार की म्युनिसिपल कमेटी का निर्वाचित मैम्बर और अवैतनिक मंत्री रहा। जिस वार्ड की ओर से मैं मैम्बर था उसके निवासियों में मुसलमानों की संख्या अधिक थी। जब वे मेरे नाम का प्रस्ताव लेकर ज़िले के साहब डिपटी कमिश्नर की कचहरी

में गये तो उक्त साहब ने उनको अपने विचार से हटाने का उद्योग किया पर वे हटे नहीं। मेरे विरोध में कोई दूसरा व्यक्ति निर्वाचन के लिए खड़ा न हुआ और मैं बिना विरोध के ही कमेटी का मैम्बर हो गया।

कमेटी का सभापति डाक सैनिक कमसरियट का युरोपियन अफ़सर था। यह बहुत कुटिल और अत्याचारी था। शहर के लोग उससे तंग थे। मैं जनता के हकों की रक्षा करता था और उनके विचारों का पक्ष लेता था। इसलिये वह और ज़िले का डिपटी कमिश्नर सदा मेरे कामों पर दृष्टि रखते थे। इस कमेटी में १२ मैम्बर देसी और तीन युरोपियन अफ़सर थे। कई बार ऐसा अवसर आया कि १२ देसी मैम्बर एक ओर, तीन युरोपियन अफ़सर दूसरी ओर। मैंने तीन वर्षों में हिसार के कसबे में शिक्षा और स्वास्थ्य की उन्नति के करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। सभापति साहब के उभारने पर एक हैडमास्टर ने मेरे साथ झगड़ा पैदा किया परन्तु इसको बहुत कुछ नीचा देखना पड़ा। शिक्षा विभाग ने मेरी कार्रवाई में कोई बात आपत्तियोग्य न पाई और हैडमास्टर को लज्जित होकर वहां से जाना पड़ा। इसी प्रकार एक दफ़ा प्रान्त के छोटे लाट के आगमन पर सभापति और डिपटी कमिश्नर के साथ स्वागतपत्र के सम्बन्ध में हमारा भारी विरोध हो गया। वह चाहते थे कि

स्वागतपत्र में जनता के कष्टों और विवादास्पद सार्वजनिक विषयों की कोई चर्चा न की जाय, मैं चाहता था कि स्वागत पत्र में इन विषयों की अवश्य चर्चा की जाय। देसी मैम्बर मुझ से सहमत हुए, अतः सभापतिसाहब और डिपुटी कमिश्नर को इस बात में नीचा देखना पड़ा। स्वागत-पत्र उर्दू में तैयार किया गया और कमेटी की ओर से मैंने उसको पढ़ा। इस सैनिक अफ़सर के कुछ काल के लिये छुट्टी चले जाने पर, हमने एक हिंदुस्तानी अफ़सर को अपना सभापति चुन लिया। मैम्बरों में इतना साहस न था कि वे किसी ग़ैर सरकारी सज्जन को सभापति निर्वाचित करते। सभापति का चुनाव कमिश्नर साहब द्वारा स्वीकृत होने पर ही मान्य होता था और मैम्बर जानते थे कि डिपटी कमिश्नर और कमिश्नर किसी ग़ैरसरकारी सभ्य के चुनाव के घोर विरोधी हैं। इन तीन वर्षों में हिसार की जनता में म्युनिसिपल विषयों में बहुत रुचि पैदा हो गई। मैं समझता हूँ कि हिसार म्युनिसिपल कमेटी में मेरा काम एक मार्ग शोधक का काम था।

हिसार में मेरे रहने के समय में हिसार के लोग म्युनिस्पिल कमेटी के काम के अतिरिक्त अन्य जन साधारण सबन्धी विषयों में भी अच्छी रुचि रखने लगे। अतएव नैशनल कांग्रेस राष्ट्रीय महासभा के समर्थन और सहायता

के लिये कई सभाएं हिसार में हुईं, जिन में बाहर से आए हुए व्याख्यानदाताओं के व्याख्यान हुए। लोग सैकड़ों की संख्या में सुनने के लिये आते रहे। हिसार एक छोटासा क़सबा था जिसकी जनसंख्या आस पास के (Suburbs) भागों को मिलाकर पन्द्रह हज़ार से अधिक नहीं है। सन् १८ की कांग्रेस में, जो प्रयाग में हुई हिसार की ओर से पांच या छः व्यक्ति शामिल हुए जिनमें तीन-चार हिसार के रईस भी थे। इसी तरह सन् १८८६ में भी हिसार के कई प्रतिनिधि बम्बई कांग्रेस में सम्मिलित हुए। डिप्टी कमिश्नर को मेरी यह राजनैतिक प्रवृत्तियां बहुत बुरी लगी थीं। पर उनके कानून की सीमा के भीतर होने से वह कुछ कर नहीं सकते थे। ज़िले के अफ़सर यद्यपि मेरे राजनैतिक जीवन को पसन्द न करते थे और जन साधारण को जगाने के लिये, मैं जो कुछ करता था उससे वह तंग थे पर उनका ऊपरी बर्ताव मेरे साथ अच्छा था। सामाजिक विषयों में सिवाय कुछ कार्यवाइयों के जो उनकी इच्छा के बिरुद्ध हुईं मेरे चलन से वे प्रसन्न थे। म्युनिसिपल प्रबन्ध और शासन में जो ईमानदारी, काम की समझदारी और सार्वजनिक हित के भाव आगये थे, उसका वह आदर करते थे। ज़िलों के न्याय विभाग के अफ़सर भी हर प्रकार से मेरा आदर और सत्कार करते थे।

उन्हीं दिनों में एक दफ़ा यहां के डिप्टी कमिश्नर ने मेरे सामने यह बात चलाई कि वह एक्स्ट्रा असिस्टैण्टी के लिये मेरी सिफ़ारिश कर सकते हैं। मेरे माता पिता भी चाहते थे कि मैं इस पद को स्वीकार करलूं किन्तु मैं अपनी स्वतन्त्रता को गँवाना नहीं चाहता था। इसलिये मैंने साहब ज़िला के इस पद प्रदान को धन्यवाद सहित अस्वीकार कर दिया। और जब इसके बाद के जीवन की घटनाओं पर दृष्टि डालता हूँ तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ कि मैं जाल से बचा रहा। संक्षेप में कह देने का तात्पर्य यह है कि हिसार में मेरा जीवन एक सफल जीवन था। मेरी आय मेरी आशाओं से अधिक थी। लोग मेरा आदर करते थे। सार्वजनिक काम के लिये क्षेत्र विस्तृत था।

ज़िले के आफ़िसर प्रसन्न थे और अगर मैं चाहता तो उनको अधिक प्रसन्न करके, वे सारी वस्तुयें प्राप्त करता जिनके पाने के लिये बहुतेरे शिक्षा पाए हुए आदमियों ने अपना धर्म बेचा। मेरे लिये यह सब वस्तुएँ सरल थीं और थोड़े से प्रयत्न से मुझे बिना किसी प्रकार धर्म बेचे हुए ही मिल सकती थीं। किन्तु मेरे जीवन का उद्देश्य दूसरा था। मैं जब तक हिसार में रहा बहुत अशांत रहा। क्योंकि मेरे भीतर से आवाज़ आती थी कि मैं अपने वास्तविक लक्ष के काम में प्रमाद कर रहा हूँ और अपने जीवन को व्यर्थ

व्यतीत कर रहा हूँ। मेरी आत्मा उड़ना चाहती थी उसको हिसार जैसे छोटे नगर के सीमित क्षेत्र में बन्द रहना अच्छा न लगता था। वह अपनी शक्तियों के विकास और अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिये विस्तृत क्षेत्र ढूँढ़ती थी। इस सांसारिक सफलता के प्राप्त होने पर भी मेरे हृदय में सोते जागते उठते बैठते यह भावना बनी रहती थी कि मैं अपने जीवन के असली उद्देश्य से दूर जा रहा हूँ। अर्थात् जीवन में असफल हो रहा हूँ। धन जमा करना, मेरे जीवन का उद्देश्य तथा भोग भोगना मेरे जीवन का अभिप्राय न था। अपने समय की सरकार के दरबार में आदर पाना भी मुझे स्वीकार न था। मेरी आत्मा की धुन किसी और ही ओर थी। वह अपनी जाति और देश की सेवा में पतंगे के समान जलना चाहती थी और इसके लिये हिसार में अवसर न थे। इसलिये मैं हिसार में जितने दिन रहा यात्री की तरह रहा। मेरे सामने कई अवसर नफ़े से ज़ायदाद पैदा करने के आए किन्तु मैंने कभी उनका विचार न किया क्यों कि मैं जानता था कि यदि मैं जायदाद पैदा कर लूंगा तो वह मेरे लिये अधिक बंधन हो जायगी। अस्थायी रूप से कुछ धन मैंने हिसार में, अवश्य व्यवहार में लगाया परन्तु अपने पिता माता और मित्रों की इच्छा के विरुद्ध जायदाद पैदा करने से बिलकुल अलहदा रहा। जो जायदाद मुझे मिलती थी

यदि मैं उसको प्राप्त कर लेता तो आज उनका मूल्य १०० प्रति शतक से अधिक होता और मैं केवल अपनी जायदाद से मालामाल हो जाता। जिन लोगों ने उस समय जायदाद पैदा की वह उसकी बदौलत मालामाल हो गए। पर मुझे उसका विचार न था।

चीफ़कोर्ट का वकील बनने के लिये नीचे की कचहरियों में ५ वर्ष वकालत करना आवश्यक था। अतएव ५ वर्ष समाप्त होते ही मैंने हिसार छोड़ने की तैयारी आरम्भ कर दी। डिवीजनल जज डिस्ट्रिक्ट जज और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्टेट ने मुझे बहुत अच्छे प्रमाण पत्र दिये। इनके कारण मुझे चीफ़कोर्ट में वकालत की आज्ञा मिल गई। आज्ञा मिलने के चार महीने के भीतर मैंने हिसार छोड़ दिया। अर्थात् हिसार में जो छः वर्ष मैंने व्यतीत किये वे मेरे आगामी जीवन के लिये तैयारी के वर्ष थे।

यहां पर मैंने ख़ासा रुपया पैदा किया। यहां पर मैंने शिक्षा की कमी को निजी अध्ययन से पूरा किया। यहां पर मैंने सार्वजनिक जीवन की आरंभिक कठिनाइयों को पार किया। यहां पर मैंने सार्वजनिक जीवन में दृढ़ता की शिक्षा प्राप्त की। यहां पर मैंने कुछ ऐसे मित्र बनाए जिनकी मित्रता और जिनका प्रेम जीवन भर मेरे लिये शान्ति और शक्ति देनेवाले प्रमाणित हुए यहां पर मैंने अपने स्वास्थ्य

आत्मकथा

श्रीमती राधादेवी जी

धर्मपत्नी श्री ला० लाजपतराय जी

को भी सँभाला। यहां पर मेरे वे दो बच्चे पैदा हुए--एक लड़की और दूसरा लड़का-जिनके साथ मुझे दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रेम रहा।

(६)

आर्यसमाज में दो दल

सन् १८९२ ई० के अप्रैल में जब मैं लाहौर पहुँचा तो उस समय लाहौर में आर्यसमाज के दो दल हो चुके थे। अभीतक सब लोग एक ही समाज में थे और प्रत्यक्षतः अलग नहीं हुए थे।

इस दल भेद का इतिहास कुछ ब्यौरेवार लिखने की आवश्यकता है क्यों कि आर्यसमाज और आर्यसमाज के सेवकों और नेताओं के जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना है। जिन लोगों ने इस भेद में बहुत बड़ा भाग लिया और जिन के व्यक्तित्व का प्रभाव इस पर पड़ा उनके जीवन का संक्षिप्त हाल भी इस अध्याय में लिखना आवश्यक है।

(१) इस भेद का भारी दायित्व उस दल के नेताओं पर है जो बाद में महात्मा पार्टी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके नेता स्वर्गीय पं० गुरुदत्त, ला० मुंशीराम, मास्टर दुर्गाप्रसाद, ला० रलाराम, ला० देवराज, रा० ब० प्याड़ाराम और राय० ठाकुरदत्त थे। दूसरे दल के नेता स्वर्गीय

ला० साईंदास, ला० मूलराज, ला० हंसराज, ला० लालचन्द थे। मैं कब और किस अवस्था में इस में सम्मिलित हुआ इसका उल्लेख आगे करूँगा।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज में अपनी विद्यार्थी अवस्था में कैसी गहरी मित्रता थी। दयानन्द स्कूल खुलने के समय भी यह मित्रता स्थिर रही और उसमें किसी प्रकार का अन्तर न पड़ा था। जिस समय जून सन् १८८६ ई० में दयानन्द स्कूल खोला गया था उस समय आर्यसमाज में पूर्ण एकता का राज्य था। किसी प्रकार का विरोध न था। ला० हंसराज इस स्कूल के हेडमास्टर सर्व सम्मति से नियत किये गये। मास्टर दुर्गाप्रसाद इसके सैकण्ड मास्टर बने। ला० लालचन्द प्रबन्धक समिति के प्रधान थे। पं० गुरुदत्त कुछ काल तक उसके मंत्री रहे। और ला० साईंदास लाहौर की आर्यसमाज के प्रधान थे। ला० साईंदास के लिये सब आर्यसमाजियों के हृदयों में बहुत बड़ा प्रेम था। उनकी बुद्धिमत्ता में लोगों की श्रद्धा था। उनका चरित्र बहुत ऊँचा और आदर्श समझा जाता था। उनका जातिहित और उनकी देशभक्ति बड़ी उच्च कोटि की थी। पंजाब भर में वह आर्यसमाज के माने हुए नेता थे। लाला साईंदास में आदमी के पहचानने का जो गुण था—वह मैंने आजतक किसी दूसरे नेता में नहीं देखा।

पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज का आर्यसमाज से गहरा सम्बन्ध पैदा करने में, ला० साईंदास के इस गुण और उनके प्रयत्न का बहुत बड़ा भाग है। वह नवयुवकों से गहरा मेल जोल और सम्बन्ध रखते थे। और उनसे ऐसी स्वतन्त्रता से बातें करते थे कि नवयुवक उन पर मोहित हो जाते थे। वह समझते थे कि किसी भी सार्वजनिक आन्दोलन की सफलता नवयुवकों के सम्मिलित होने पर निर्भर है? जितने उत्साही और साहसी नवयुवक किसी आन्दोलन में सम्मिलित होंगे उतनी ही अधिक सफलता उसको प्राप्त होगी। उन दिनों आर्यसमाज का आरम्भ था। उसके पहले मैम्बरों में नई शिक्षा प्राप्त मैम्बर थे जिन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य से भावों का प्रवाह और देश प्रेम की शिक्षा प्राप्त की थी और जो इस नई लहर से प्रभावित होकर स्वामी दयानन्द के झण्डे के नीचे इकट्ठे हो गये थे। उनमें बहुत थोड़े ऐसे थे जिनको संस्कृत का नाम मात्र का भी ज्ञान था। पुराने संस्कृत जानने वालों में से कोई अच्छी संख्या इस समूह में सम्मिलित न हुई। जो आए भी वे केवल लाभ के विचार से। पहले मैम्बरों में पंजाब प्रान्त के कुछ प्रसिद्ध उपाधि धारी सम्मिलित थे। अस्तु।

मास्टर श्रीराम एम. ए. जो उस समय नार्मल स्कूल के हैडमास्टर थे कुछ समय तक आर्यसमाज के मंत्री रहे।

ला० मूलराज एम. ए. जिन्होंने पंजाब में से प्रेमचन्द रायचंद की परीक्षा पास की. समाज के पहले प्रधान थे। ला० ईश्वर दास एम. ए. उनके भाई ला० नारायणदास एम. ए. ला. अच्छरूराम बी. ए., ला. मदनसिंह बी. ए. ला. द्वारकादास एम. ए. ला. केदारनाथ एम. ए. ला. भवानीदास एम. ए. इत्यादि सब आर्यसमाज के पहले मैम्बरों में गिने जाते हैं। पंजाब में से जिन नवयुवकों ने कलकत्ता विश्व विद्यालय की उपाधियां आरंभ में प्राप्त कीं उनमें से प्रायः प्रसिद्ध उपाधि-धारी समाज के मैम्बर थे। इसी तरह पंजाब में जिन सज्जनों ने सबसे पहले असिस्टैगट सर्जन या वकालत की सनदें प्राप्त कीं वे भी आर्यसमाज में सम्मिलित थे। इन में से कइयों के नाम पं० लेखराम जी की लिखी हुई स्वामी जी की जीवनी में और मेरे लिखे हुए स्वामीजी के जीवनचरित्र में दिए गये हैं। उनमें से यदि कोई संस्कृत जानने वालों के नाम चुनने का यत्न करेगा तो बहुत थोड़े मिलेंगे। उच्च कोटि के शिक्षा प्राप्त नवयुवकों के अतिरिक्त एक अच्छी संख्या साधारण परीक्षा पास लोगों की थी जो सरकारी दफ्तरों में भिन्न भिन्न पदों पर नौकर थे। ला० साईंदास भी उनमें से थे। उनकी अंग्रेजी शिक्षा ऊँचे दर्जे की थी। फ़ारसी में वह अच्छी योग्यता रखते थे। कुछ संस्कृत भी जानते थे। वह पंजाब गवर्नमेगट के दफ्तर में अनुवादक थे। अंग्रेज़ी से

उर्दू में अनुवाद किया करते थे। उनका वेतन सन् १८८३ ई० में जब मेरा उनसे परिचय हुआ १३०) मासिक था।

जिन नवयुवकों का मैंने नाम लिया है उनमें बहुतों की सामाजिकस्थिति उस समय भी लाला साईंदास से बहुत अच्छी थी। उनमें से कुछ एक्स्ट्रा एसिस्टैएट कमिश्नर नियत हो चुके थे और कुछ ने थोड़े ही दिनों में वह पद प्राप्त किया। लाला साईंदास को जो स्थान समाज में प्राप्त था—वह केवल उनके उच्च चरित्र के कारण था। विद्वत्ता और सम्पत्ति उनके पास न थी। न विश्वविद्यालय की कोई उपाधि उनको मिली थी। न वह धनाढ्य कुटुम्ब के थे। उनके नेतृत्व का कारण उनकी देशभक्ति और उनकी अद्वितीय जातिभक्ति थी। लाला साईंदास जन्म के खत्री थे। उनका स्वभाव भी क्षत्रियों का सा था वह अपने निश्चय में अटल, उत्साह में ऊँचे, साहस में दृढ़ और अपनी बात के पक्के थे। जब वह पहले पहल लाहौर में आए तो वह भी कुछ समय तक ब्रह्म-समाज के मैम्बर रहे। क्यों कि लाहौर में यही एक समाज थी जहां पर शिक्षा प्राप्त लोग इकट्ठ होकर अपनी जाति के सुधार का विचार कर सकते थे। स्वर्गीय लाला विहारीलाल के साथ मिलकर फिर इन्होंने एक सत्सभा बनाई। क्यों कि ब्रह्मसमाज में बंगाल के भाव काम करते थे और यह पंजाबी नेता अपने सुधार के आन्दोलन में एक पंजाबी भाव

भरना चाहते थे। अस्तु।

स्वामी दयानन्द के प्रचार के बाद लाहौर में आर्य-समाज स्थापित हो गया। लाला साईंदास को अपनी रुचि के अनुसार जातिसेवा करने का मैदान मिल गया। लाला साईंदास परमेश्वर में विश्वास रखते थे किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वह 'भक्त' थे। परन्तु हम निश्चय रूप से कह सकते हैं कि वह जाति भक्त और देशभक्त थे। हिन्दू जाति के साथ उनको अत्यन्त प्रेम था। हिन्दुओं की गिरी दशा ने उनके हृदय पर इतने घाव कर दिये थे कि दिनरात उनकी पीड़ा से विकल रहते थे। जिस समय वह बात चीत करते थे ऐसा मालूम होता था कि उनके अन्दर एक ऐसी आग जलरही है जो उनके शरीर और आत्मा को जला रही है। जब वह हिन्दु जाति की पुरानी और वर्तमान दशा में तुलना करते थे तो आहें लेकर धुआंदार करदेते थे। जाति के लिये इस कोटि का पवित्र प्रेम, हृदय की इतनी ज्वाला और इतनी लगन; अपने जीवन भर मैंने कम हिन्दुओं में पाई है और किसी में उनसे बढ़कर नहीं पाई। ला० साईंदास की जातिभक्ति में यह विशेषता थी, कि जो कोई उनके सम्बन्ध में आता था उस पर वह जादू का असर करती थी। ऐसी बहुत कम आत्माएं होंगी जो उनके प्रभाव में आकर उनके भण्डार से जाति प्रेम का चढ़ावा लेकर न गई हों। उनकी जातिभक्ति

की तुलना एक संक्रामक रोग से की जा सकती है। जिससे वह मिलते थे उसको जगा देते थे। ला० हंसराज के भाई ला० मुलखराज भल्ला ब्राह्मो धर्म को मानते थे। वह कभी आर्यसमाजी नहीं हुए। परन्तु ला० साईंदास से उनको गहरा प्रेम था। ला० हंसराज का ला० साईंदास से सम्बन्ध उसी प्रेम का फल था।

ला० साईंदास ने बहुत से नवयुवकों पर हाथ फेरा। किन्तु पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज पर जो प्रभाव उनकी शिक्षा और उनकी संगत का हुआ उसका जोड़ आर्यसमाज के इतिहास में दूसरा नहीं। यह दोनों नवयुवक ला० साईंदास की पूजा किया करते थे। उनको ला० साईंदास की बुद्धिमत्ता में अत्यन्त श्रद्धा थी और ला० साईंदास को भी उन पर बड़ा भरोसा और उनके साथ बहुत प्रेम था। ला० हंसराज ने आर्यसमाज की शिक्षा उनसे पाई। पं० गुरुदत्त के सम्बन्ध में भी यह कहा जाता है कि जब वह एण्ट्रेंस की परीक्षा पास करके लाहौर में आए थे तो वे ईश्वर को नहीं मानते थे। मेरी सम्मति में पं० गुरुदत्त नास्तिक अर्थात् ईश्वर को न माननेवाले नहीं थे। किन्तु उनके भाव संदेहात्मक थे। वह प्रमाणवाद (Agnosticism) की ओर अधिक झुके हुए मालूम होते थे। ला० साईंदास के प्रभाव से उन्होंने संस्कृत की धार्मिक पुस्तकों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया।

किन्तु उनके भीतर जो महान् परिवर्तन पीछे से हुआ वह स्वामी दयानन्द के मृत्यु के दृश्य से उत्पन्न हुआ। इस दृश्य ने उनके सारे धार्मिक संदेह मिटा दिए और वह पक्के आस्तिक हो गये। पं० गुरुदत्त आश्चर्यजनक बुद्धि के पुरुष थे। स्वाभाविक योग्यता और विद्या की योग्यता में वह अपने साथियों से बहुत आगे बढ़े हुए थे। कुछ आत्मश्लाघा उनकी तबियत में थी। उनके पास नवयुवकों का जमघट रहा करता था। और जो कुछ उनकी प्रशंसा में कहा जाता था वह उनके कानों को प्रिय मालूम होता (किसको अपनी प्रशंसा प्रिय मालूम नहीं होती?)। हम सब नवयुवक उनको गुरूजी कहा करते थे और वह उससे प्रसन्न होते थे। किन्तु ऐसा होने पर भी वह ला० साईंदास और ला० हंसराज की बुद्धिमत्ता और गंभीरता पर बहुत भरोसा रखते थे और प्रायः अपने कामों में उनका पथ प्रदर्शन स्वीकार करते थे। सन् ८६ और सन् ८७ ई० में उनके पारस्परिक सम्बन्धों में कुछ अन्तर नहीं पड़ा वह दयानन्द स्कूल में बहुत रुचि रखते थे। कभी कभी स्कूल में पढ़ाते भी थे। यद्यपि वह इस समय गवर्नमैगट कालेज में विज्ञान के उपाध्याय भी थे। बोर्डिङ्गहाउस के विद्यार्थियों से भी बहुत प्रेम था। उन्हीं दिनों इनके पास आर्यसमाजियों का एक समूह जमा हो गया जो उनसे संस्कृत और अष्टाध्यायी आदि पढ़ने लगा।

पं० गुरुदत्त के स्वभाव में एकाङ्गीपन (इन्तहाई पसन्दी (Extremism) या एकान्तता का भाव था। धीरे धीरे उनका एकाङ्गीपन बढ़ गया और वह यह कहने लगे कि अंग्रेजी पढ़ना व्यर्थ है। पश्चिमी विज्ञान में कुछ नहीं रखा। लोग कहते हैं कि एक बार इन्होंने यह भी कहा कि अच्छा होता यदि मैं अपनी सारी अंग्रेज़ी और पश्चिमी विद्या को भूल सकता और केवल संस्कृत जानता इत्यादि इत्यादि।

लाο साईंदास और लाο हंसराज उन के विचारों से सहमत न थे। वह इस बात को पसंद नहीं करते थे कि पं० गुरुदत्त इतने एकाङ्गी भावों का प्रचार करें। इसके अतिरिक्त पं० गुरुदत्त का गहरा सम्बन्ध मास्टर दुर्गाप्रसाद से हो गया। मा० दुर्गाप्रसाद निरामिषभोजी और मांस के विरोधी थे। लाο मुंशीराम भी इन दिनों गुरुदत्त से अधिक मिलने जुलने लगे। यह भी निरामिष भोजी थे। लाला साईंदास और लाο हंसराज दोनों मांस खाते थे। पहले तो गुरुदत्त ने उनके मांस खाने पर कभी ध्यान नहीं दिया; परन्तु मास्टर दुर्गाप्रसाद और लाο मुंशीराम की संगत से उनका ध्यान उस ओर गया और उनके हृदय में लाला साईंदास और लाο हंसराज की ओर से कुछ घृणा होने लगी। उन्हीं दिनों यह प्रश्न पेश हुआ कि दयानन्द कालेज का प्रिंसिपल किसको बनाया जाय। लाο साईंदास का झुकाव

स्पष्ट रूप से ला० हंसराज की ओर था। पं० गुरुदत्त के प्रेमी चाहते थे कि वह प्रिंसिपल बनें। मुझे विश्वास है कि पं० गुरुदत्त के हृदय में ला० हंसराज के लिये ईर्ष्या की गंध भी न थी। परन्तु यह सम्भव है कि लाला साईंदास और लाला लालचन्द की किसी बात पर, किसी सम्मति प्रकाशन पर उनको बुरा लग गया हो। ला० साईंदास और लाला हंसराज के जीवनों में इन दिनों धर्म की छाप बहुत गहरी न थी। इन लोगों के हृदय सिंहासन पर तो जाति प्रेम का दीपक जलता था। यह समझते थे कि जाति को अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी विद्याओं के अध्ययन से हटाना और संस्कृत व्याकरण पर डालना जाति के लिये बहुत हानिकर है।

पं० गुरुदत्त के भाव ऐसे स्थान पर पहुँच चुके थे कि उनकी दृष्टि में धर्म और संस्कृत के सामने जाति और जाति हित अहित की असलियत न थी। वह हर समय प्रायः कल्पना के संसार में रहते थे। उनके हृदय पर देशी आदर्शवाद ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था जिसमें जाति का कोई स्थान न था। मास्टर दुर्गाप्रसाद भी इन्हीं विचारों के आदमी थे। इन दोनों में आपस में बहुत प्रेम था। विचारों की यह दो लहरें अलग बहने लगीं। परिणाम यह हुआ कि दोनों दल एक दूसरे को समालोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे। विचारों के भेद से व्यक्तिगत भेद की नींव पड़ने

लगी। पं० गुरुदत्त और मास्टर दुर्गाप्रसाद के हृदय में ला० साईंदास और ला० हंसराज का मांस भक्षण खटकने लगा लाहौर आर्यसमाज में एक ऐसा दल बन गया जिसने मांस भक्षण के कारण ला० साईंदास पर आक्रमण करना आरम्भ किया और उनको प्रधानपद से अलग करने की नींव डाली। मैं उन दिनों हिसार में था और मेरा दोनों दलों से गहरा सम्बन्ध था इसलिये जब कभी मैं लाहौर आता था मुझसे किसी भी दल के लोग दिल खोलकर बात न करते थे। ला० साईंदास के स्वभाव में भी कुछ अहंकार की बू आती थी। वह अपनी बात ही करना चाहते थे और एकाङ्गी कल्पना के घोड़े दौड़ाने वालों को पसंद न करते थे। जो लोग लम्बी लम्बी प्रार्थना कराते थे और बार बार ईश्वर या धर्म का नाम लेते थे उनको वह, भरोसे के योग्य जाति का नेता न समझते थे। मेरा विश्वास है कि वह ईश्वर को मानते थे और उसकी पूजा को कर्तव्य समझते थे। परन्तु वह धर्म को उचित से अधिक स्थान देने के विरोधी थे। उनका विचार था कि हिन्दू जाति में संतुलन या साम्य (Balance) पैदा करने की आवश्यकता है। धर्म को त्यागना नहीं चाहते थे किन्तु धर्म की सूक्ष्मताओं और धर्म के कल्पित प्रभावों से जाति को निकालना चाहते थे। उनको गुरुदत्त के साथ दिली प्रेम और लगाव था। वह

वह उसको बच्चों की तरह प्यार करते थे; परन्तु उनको अपनी धुन और अपने विचारों से गुरुदत्त से भी अधिक प्यार था। वह समाज के प्लैटफार्म से मांस भक्षण के विरोध में व्याख्यान देने में अड़चन न डालते थे परन्तु स्वयं मांस खाने को बुरा न समझते थे इस लिये उसको छोड़ने को तैयार न थे। उनकी तबियत में हठ भी था। मेरा यह विचार है कि यदि वह उस समय कुछ अधिक सहनशीलता कुछ अधिक प्रेम और नीति से काम लेते तो वह गुरुदत्त को अपना विरोधी बनने से रोक सकते थे। यदि ला० हंसराज भी ऐसा करते तो मुझे विश्वास है कि, गुरुदत्त उनका विरोध न करते। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि दोनों दलों में विरोध उत्पन्न होते ही दोनों के हृदयों में एक दूसरे से मालिन्य और घृणा पैदा हो गई और हरेक अपने रास्ते पर जाने लगा। दोनों की तबियतों में अहंकार और बेपरवाही भर गई। दोनों एक दूसरे से दूर होने लगे, यहां तक कि उनके अन्दर इतना भेद हो गया कि उनको इकट्ठा करना कठिन हो गया।

मुझे ठीक याद नहीं कि दयानन्द कालेज का कालेज विभाग सन् ८८ ई० में खुला या सन् ८६ ई० में, किन्तु यह मुझको अच्छी तरह से याद है कि कालेज डिपार्टमैण्ट के खुलने से पहले जो वार्षिकोत्सव लाहौर समाज का हुआ था उस

अवसर पर पण्डित गुरुदत्त बहुत बीमार थे। उनको क्षयी रोग आरम्भ हो चुका था। वह सूखकर कांटा हो गये थे, परन्तु कमेटी के उस अधिवेशन में बह उपस्थित थे जिसमें कालेज की श्रेणियां खोलने का निश्चय हुआ। मैं भी इस अधिवेशन में शामिल था। पण्डित गुरुदत्त ला० साईंदास ला० हंसराज और मैं सब एक राय के थे और कालेज की श्रेणियों के खोलने पर ज़ोर देते थे। स्वर्गीय लाला लालचन्द, लाला द्वारकादास, राय गंगाराम और स्वर्गीय ला० मदनगोपाल यह सब लोग विरुद्ध थे। उनका यह मत था कि अभी स्कूल अच्छी तरह से मज़बूत नहीं और स्कूल पूरा मज़बूत करने से पहले कालेज बिभाग का खोलना समय से पहले है। अन्त में ला० मदनगोपाल के चले जाने के कारण एक मत की अधिकता से ला० साईंदास का प्रस्ताव स्बीकृत हो गया। इस समय तक यदि स्वर्गीय पण्डित गुरुदत्त के हृदय में ला० हंसराज की ओर से कुछ मैल रहा होगा तो बहुत कम। मेरा यह विचार है कि गुरुदत्त ने कभी ला० साईंदास और ला० हंसराज पर आक्रमण नहीं किया। निःसन्देह उनके पक्षपाती उनके नाम और उनके प्रभाव से लाभ उठाकर ऐसा करते रहे। यह आग सुलग ही रही थी कि पण्डित गुरुदत्त की बीमारी भयानक हो गई। किसी प्रकार के विरोध के बिना सारे आर्यसमाज ने हृदय से पं० गुरुदत्त

की सेवा की। उनकी चिकित्सा और सेवा में किसी प्रकार की बात उठा नहीं रक्खी गई। ला० साईंदास और लाला हंसराज उसमें हृदय से काम करते रहे। परन्तु बेचारे गुरुदत्त का शरीर न रह सका। ईश्वर की गति! गुरुदत्त की मृत्यु के तीन चार महीने के भीतर ही ला० साईंदास का देहान्त होगया।

दोनों नेता छः मास के भीतर आर्यसमाज को विछोह का दुःख दे गये। मुझे शोक से कहना पड़ता है कि आजतक आर्यसमाज ने गुरुदत्त जैसा विद्वान् और ला० साईंदास जैसा नीतिज्ञ पैदा नहीं किया। ला० साईंदास की मृत्यु के बाद लाहौर की आर्यसमाज के प्रधान पद पर ला० हंसराज नियत हुए और मेरा विचार है कि इस घटना ने भी दूसरे दल को बहुत भड़का दिया। दूसरे दल को यह बहुत बुरा लगा कि मास्टर दुर्गाप्रसाद और लाला जीवनदास जैसे वयोवृद्ध लोगों के उपस्थित रहते लाला हंसराज को समाज का प्रधान बनाया गया।

यह आग इसी तरह सुलगती रही। लाहौर आर्यसमाज में दो दल हो गये और यह दोनों दल बाहर की समाजों में अपने अपने अनुयायी बनाने लगे। यद्यपि ला० हंसराज बाहर की समाजों में जाते थे परन्तु उनका अधिक समय स्कूल और कालेज के प्रबन्ध में लगता था समाज की साधारण जनता से उनका

मेल जोल कम था। इसके विरुद्ध मास्टर दुर्गाप्रसाद का मकान समाज की साधारण जनता का केन्द्र था और वह स्वयं प्रायः बाहर की समाजों में प्रचार के लिये जाते थे। समाज के उपदेशक भी मास्टर दुर्गाप्रसाद के दल का पक्ष लेते थे। एक तो ला० हंसराज स्वभाव से इतने अल्पभाषी थे और वह लोगों से इतना कम मिलते थे कि समाज के उपदेशक उनको घमण्डी समझते थे। दूसरे ला० हंसराज में यह आर्थिक शक्ति नहीं थी कि वह उपदेशकों और बाहर से आए हुए भाइयों का आतिथ्य कर सकें। मास्टर दुर्गाप्रसाद के पास उनके वेतन के अतिरिक्त कुछ जमा किया हुआ रुपया भी था। पण्डित गुरुदत्त भी जब तक जीवित रहे उनको रुपया देते रहे। घर के अकेले थे और उनके यहां अतिथियों का जमघट रहता था और उपदेशक लोग भी वहां आकर ठहरते थे। तीसरे मांसाहारी होने के कारण उपदेशकों की सहानुभूति ला० हंसराज के विरुद्ध थी। चौथे ला० हंसराज अपने कड़ेपन और पृथकता के कारण विद्यार्थियों में बहुत अप्रिय थे। वह नियंत्रण के अवतार थे। विद्यार्थी उनसे डरते थे और उनको प्रेम की दृष्टि से न देखते थे।

ला० मुन्शीराम आरम्भ से ही क्रियाशील आन्दोलनकारी (Active Propagandist) थे। उनकी सहानुभूति-

पूर्णतया मास्टर दुर्गाप्रसाद के साथ थी । ला० मुन्शीराम प्रारम्भ से ही समाज में अच्छा भाग लेते रहे हैं। उन में कुछ विशेष गुण हैं, जिन से वह लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । प्रथम तो वह बातचीत में बिलकुल खुले और स्पष्टवादी हैं। दूसरे वह अतिथियों का सत्कार करते हैं। तीसरे वह बहुत जल्द दूसरों पर विश्वास करते हैं। चौथे वह अपने काम में, और अपने विचारों में दृढ़ थे। ला० मुन्शीराम आरम्भ से ही समाज में विशेष शक्ति प्राप्त करने के काम करते रहे हैं। आर्यसमाज के घरेलू झगड़े में, वह भी नेता थे। पण्डित गुरुदत्त और मास्टर दुर्गाप्रसाद से उनका गहरा सम्बन्ध था, वह समाजों में प्रायः जाते थे और व्याख्यान आदि देते थे। उनका समाचार पत्र अपने निकलने के पहिले दिन से ही आर्यसमाज के क्षेत्र में अच्छा काम करता रहा और लोक प्रिय रहा है। आर्यसमाज के पहले घरेलू झगड़े में ला० मुन्शीराम का दल बाहर की समाजों में बहुत प्रभाव रखता था। समाचार पत्र--व्याख्यान दाता और धार्मिक प्रकार की शक्तियां:— यह तीनों ही शक्तियां उनके हाथ में थीं।

ला० हंसराज के दल के हाथ में, केवल एक अंग्रेजी की "आर्य पत्रिका" थी और उनके स्वभाविक गुण चुप रहना और अलग रहना भी उनके विरुद्ध थे। तथापि

आर्यसमाज का जो उच्च शिक्षा प्राप्त भाग था—वह लाला हंसराज के साथ था। मांस का प्रश्न-विचार स्वातंत्र्य के प्रश्न के साथ मिल गया। इसलिये उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों में से जो लोग जन्म से स्वभाव से और और विश्वास से भी निरामिष भोजी थे, ला० हंसराज की ओर थे।

आर्य समाज के घरेलू झगड़े की आन्तरिक जड़ में नीचे लिखे सिद्धान्त और कारण थे—

पहले ला० हंसराज की व्यक्तिगत अप्रियता। लोग लाला हंसराज को अभिमानी, आत्मश्लाघी तथा शक्ति का इच्छुक समझते थे। उनकी चुप उनका मितभाषण उनकी मेल जोल न करने की आदत, प्रबन्ध के मामलों में उनका कड़ापन यह सब उन के विरुद्ध अप्रसन्नता उत्पन्न करने के कारण थे। दूसरे, मांस का प्रश्न जिसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती की सम्मति को प्रमाणस्वरूप मानने का प्रश्न सम्मिलित था। पण्डित गुरुदत्त अपने अन्तिम दिनों में स्वामी दयानन्द के ऐसे भक्त हो गए थे कि वह उनका विरोध सहन न करते थे। जो व्यक्ति उन से थोड़ा भी विरोध करता था वह उस से चिढ़ पड़ते थे और प्रायः केवल हठ के भाव से स्वामी जी की सब सम्मतियों को निर्भ्रान्त भी कह देते थे। वह अपने विश्वास में आवेशवश प्रायः यह कहते थे कि सत्यार्थप्रकाश का प्रत्येक शब्द ठीक और

सत्य है। उनके अनुयाइयों और चेलों के भी यही भाव थे। जब गुरुदत्त के दल ने मांस का प्रश्न उठाया तो स्वभावतः दूसरी ओर से यह प्रश्न उठाया गया कि स्वामी दयानन्द की सब सम्मतियां आर्यसमाज को बद्ध नहीं करतीं और वह भूल की सीमा के परे नहीं हैं। लाला मुन्शीराम के दल के कुछ सज्जन जिनमें से लाला आत्माराम अमृतसरी एक थे और जिस में कई नवयुवक भी थे, स्वामी जी को भूलों से परे कह देते थे। परन्तु यह दल कहता था कि जब तक स्वामी जी से अच्छा वेदों का ज्ञाता समाज में पैदा न हो उस समय तक स्वामी जी के सारे सिद्धान्त और उनकी सब शिक्षा आर्य समाज को बद्ध करती हैं. और हमारा कर्तव्य है कि हम उनके सिद्धान्तों को आर्यसमाज के लिए माननीय समझें। कालेज दल इसके विरुद्ध विचारस्वातन्त्र के पक्ष में था, और वह सिद्धान्त रूप से इस बात के विरुद्ध था कि समाज में स्वामी जी को अचूक धर्म-निर्णायक का स्थान दिया जाय। कालेज दल के कुछ नेता जिन में लाला मूलराज अगुआ थे, न केवल मांस खाने को, उचित समझते थे किन्तु उसका प्रचार भी करते थे। लाला हंसराज के बड़े भाई लाला मुलखराज जी मांस खाने के पक्ष में थे और उसका प्रचार करते थे। महात्मा दल यह कहता था कि यद्यपि लाला मुलखराज समाज के नियमानुकूल सदस्य नहीं

हैं तथापि लाला हंसराज के बड़े भाई होने के कारण और इस कारण से भी कि वह लाला हंसराज का निर्वाह देते हैं, उनका प्रभाव सामाजिक क्षेत्रों में बहुत बड़ा है। इस लिए उस दल के लोग लाला हंसराज को लाला मुलखराज के प्रचार का उत्तरदायी समझते थे। इस स्थान पर आवश्यक है कि हम लाला मुल्कराज के सम्बन्ध में अधिक ब्योरा लिखें। जिन दिनों लाला हंसराज जी कालेज में पढ़ते थे वह ब्रह्मसमाज के सदस्य थे, किन्तु उनका सम्बन्ध लाला साँईदास से बहुत गहरा था। लाला मुलखराज की रुचि ब्रह्म समाज में गहरी नहीं हुई। उनका झुकाव आरम्भ से ही हिन्दू जातीयता की ओर था। वह हिन्दुओं की पुरानी महत्ता की स्मृति में कविता किया करते थे। उनके लेखों आदि की चर्चा हम आगे चल कर करेंगे, इस स्थान पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि आर्यसमाज के क्षेत्र के बाहर और आर्यसमाज के क्षेत्र के भीतर भी लाला मुलखराज का व्यक्तिगत प्रभाव बहुत बड़ा था। लोग लाला मुलखराज का आदर इस कारण से भी करते थे कि वह लाला हंसराज के बड़े भाई है और उनके साहस और उदारता से लाला हंसराज समाज और कालेज की अवैतनिक सेवा करते हैं। किन्तु सत्य यह है कि इस बात के अतिरिक्त भी लोग उनका बहुत आदर करते थे। उनका प्रभाव केवल लाला

हंसराज के कारण न था, परन्तु स्वयं अपने चरित्र अपनी उच्च देशभक्ति और अपने दूसरे गुणों के कारण था। वह जहां जाते थे जातिहित, देशभक्ति और परोपकार का केन्द्र हो जाते थे। उनमें अतिथि सत्कार का गुण था, वह लोगों के काम आते थे, उनके दुःख दर्द में शामिल होते थे और इस कारण से जहां वह रहते थे वहां बड़ी भारी शक्ति और प्रभाव पैदा कर लेते थे। उनकी नौकरी इस प्रकार की थी कि जिसके कारण उनको प्रायः यात्रा करनी पड़ती थी और पंजाब के भिन्न भिन्न नगरों में जाने का उनको अवसर मिलता था। उनके मित्रों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था और उस समय कदाचित् पंजाब भर में व्यक्तिगत प्रभाव उनसे बढ़ कर किसी एक मनुष्य का न था। मेरा अपना विचार है कि उन का प्रभाव लाला हंसराज से भी अधिक था। लाला मुलखराज मांस खाने के पक्ष में थे। उनकी सम्मति में बौद्ध धर्म और जैनधर्म आर्यावर्त के राजनीतिक नाश के कारण हुए। उनका विचार था कि अहिंसा की लोकप्रिय पर अनुचित शिक्षा ने लोगों को बोदा और नाकारा बना दिया। इस लिए वह अनुचित अहिंसा का उच्च स्वर से विरोध करते थे। वह एक प्रकार से सैनिक भावों के पक्षपाती थे। अतएव जिस समय आर्य समाज में मांस का प्रश्न उठा उस समय उन्होंने एक बड़ा आन्दोलन निरामिष भोजन प्रणाली

के विरुद्ध आरम्भ किया। कई पुस्तिकाएं निरामिष धर्म के विरुद्ध लिखीं।

लाला मुन्शीराम और उनके समविचार सज्जन लाला मुलखराज की कार्यवाही से बहुत चिड़ते थे और यह समझते थे कि वह लाला हंसराज की रक्षा के लिये यह सब करते हैं और वह अपने मांस प्रचार में आर्यसमाज का उपयोग करते हैं। सच यह है कि यद्यपि लाला हंसराज मांस के सम्बन्ध में लाला मुल्कराज से बहुत कुछ सहमत थे परन्तु वह स्वयं मांस प्रचार के पक्ष में न थे। इस मांस के विवाद में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि लाला मूलराज और लाला हंसराज राजनैतिक विचारों के आदमी हैं, धर्म को वह केवल एक गिलाफ़ के ढंग पर प्रयोग कर रहे हैं और वह समाज से राजनैतिक काम लेना चाहते हैं। लाला मुन्शीराम और मास्टर दुर्गाप्रसाद अपने को केवल धर्म प्रचार का पक्षपाती कहते थे।

जब दयानन्द हाईस्कूल स्थापित हुआ उस समय इच्छा यह थी कि पहले उसको लोकप्रिय बनाया जावे। पहले पहल तो स्वभावतः उसमें लड़के दूसरे स्कूलों से आकर भरती हुए। इसलिये निश्चय यह किया गया कि जो लड़के पहली श्रेणी से अंतिम श्रेणियों तक भरती हों उनको वही शिक्षा दी जावे जो दूसरे स्कूलों में दी जाती है,

किन्तु उद्योग यह किया जाय कि वह हिन्दी और संस्कृत भी पढ़ें। परन्तु जो लड़के आरम्भिक श्रेणियों में भरती हों उनको केवल हिन्दी में शिक्षा दी जावे और उन के लिये संस्कृत पढ़ना अनिवार्य हो। आरम्भ के वर्षों में ही इस बात पर झगड़ा हो गया कि संस्कृत किस तरह पढ़ाई जावे। पण्डित गुरुदत्त चाहते थे कि स्वामी जी की पुस्तकें पढ़ाई जावें और स्वामी जी की बनाई हुई योजना के अनुसार संस्कृत पढ़ाई जावे। लाला लालचन्द और लाला हंसराज इसके विरुद्ध थे। पण्डित गुरुदत्त अपने जीवन में अष्टाध्यायी पढ़ने पर ज़ोर देते थे। पहले तो मेल समझौते से काम होता रहा और कुछ प्रस्ताव पंडित गुरुदत्त के दल के स्वीकृत हुए और कुछ अस्वीकृत हुए। गुरुदत्त के मरने के बाद इस दल का शिक्षानेतृत्व लाला रलाराम (गूजरखानी) के हाथ में चला गया। लाला मुन्शीराम और लाला रलाराम इस बात पर बल देने लगे कि स्कूल और कालेज में संस्कृत मुख्यभाषा बनाई जावे और स्वामी जी की स्थापित योजना के अनुसार शिक्षा दी जावे। लाला लालचंद और लाला हंसराज यह नहीं चाहते थे कि अंग्रेज़ी केवल गौण और वैकल्पिक की जावे। वे यूनिवर्सिटी से अपने स्कूल और कालेज का सम्बन्ध तोड़ने के विरुद्ध थे, यद्यपि वे यह चाहते थे कि यूनिवर्सिटी की

शिक्षा के साथ साथ संस्कृत और प्राचीन संस्कृत साहित्य की पढ़ाई पर बल दिया जावे। धीरे धीरे यह विरोध इतना बढ़ गया कि दोनों दलों में झगड़े का आधार हो गया और आर्य समाजों में इस प्रश्न से भी भेद पड़ गया।

इन प्रश्नों ने स्वभावतः यह रूप ग्रहण किया कि दोनों दल समाजों में अपनी अपनी संख्या बढ़ाने लगे। उस समय समाज और कालेज का प्रबन्ध लाला हंसराज और उनके दल के हाथ में था। लाला हंसराज दयानन्द कालेज के मुख्याध्यापक थे और वही आर्यसमाज लाहौर के प्रधान थे और वही पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे। लाला मुंशीराम का दल यह उद्योग करने लगा कि लाला हंसराज के दल के हाथ से समाज का शासन छीना जावे। समाज का घरेलू झगड़ा यहां तक पहुँच चुका था जब मैं अप्रैल सन् १८९२ ई० में लाहौर पहुँचा। मेरे आने से पहिले ही सन् १८९१ ई० में मुझे कालेज की प्रबन्धसमिति का पत्रव्यवहार करने वाला मंत्री बना दिया गया था और मैं कालेज के लिये चिट्ठियां भिन्न भिन्न समाजों को और कालेज से सहानुभूति रखने वालों को लिखा करता था। सन् १८९२ ई० में जब कालेज के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ तो मैं उसका मंत्री नियत किया गया और आते ही कालेज के काम में लग गया। पण्डित गुरुदत्त मर चुके थे। लाला

हंसराज कालेज में पढ़ने के समय से मेरे मित्र थे। कालेज के मन्त्री होने से भी मेरा उनसे और लाला लालचन्द तथा ईश्वरदास से अधिक काम पड़ता था। दूसरे दल में मास्टर दुर्गाप्रसाद के साथ मेरा सम्बन्ध था और पण्डित गुरुदत्त के कुछ व्यक्ति गत मित्रों से, जिन में भक्त रैमलदास साहब थे, मुझे परिचय प्राप्त था, । कुछ समय तक तो मैं सामाजिक झगड़ों में तटस्थ रहने का उद्योग करता रहा, किन्तु मेरी तबियत का झुकाव कालेज दल की ओर था। मैं इस बात के पक्ष में न था कि कालेज और स्कूल की योजना में वे महान परिवर्तन किये जावें जो महात्मा दल कराना चाहता था। मांस के विषय में भी मेरी तवियत का झुकाव लाला हंसराज के पक्ष में, था, यद्यपि सिद्धांत से मैं विलकुल बेपरवाह था। मेरी सम्मति थी कि इस विषय पर बहुत ज़ोर न देना चाहिये। सन् १८९१ ई० का संपूर्ण वर्ष कठिन आन्दोलन में बीता। जहां तक मुझे याद पड़ता है सन् १८९१ ई० के अंत में लाला हंसराज समाज के प्रधान-पद से स्वयं अलग हो गये थे और उनके स्थान पर मास्टर दुर्गाप्रसाद प्रधान थे। समाज में स्थायी भेद डालने के लिये यदि किसी बात ने ईंधन का काम किया तो वह मास्टर दुर्गाप्रसाद की प्रधानी थी। मास्टर जी में प्रबंध करने की योग्यता और नेता बनने के गुण कभी भी नहीं हुए और उनकी प्रधानी

के काल में लाहौर आर्यसमाज में व्याख्यानों और धर्मोपदेशों में खुले तौर पर दलबन्दी के मतलब के लिये समाज का उपयोग किया। एक बार मास्टर साहब छाती खोल कर मञ्च पर खड़े हो गये और दूसरे दल को आक्रमण करने के लिये ललकारने लगे। लाहौर आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा के अधिवेशन नियमित रणक्षेत्र के नमूने थे। वर्ष भर तक दोनों दल अपनी अपनी संख्या बढ़ाने में लगे रहे। नए सदस्य बढ़ाए गए पुराने सदस्यों ने वर्ष भर का चंदा देकर सम्मति देने का अधिकार प्राप्त किया। एक एक सदस्यने कई कई वार अपनी सम्मति बदली। व्याख्यानों में, उपदेशों में, समाचार पत्रों में वैयक्तिक अशिष्ट आक्रमणों का ववंडर चलता रहा। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उन दलों में से किसने कमी की। हां मैं यह कह सकता हूँ कि लाला हंसराज का दल जो कुछ करता था कुछ सभ्यता से करता था और मास्टर दुर्गाप्रसाद का दल जो करता था बिलकुल अक्खड़पने से और भड़काने के भाव और ढंग से करता था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि वर्ष भर समाज की अन्तरङ्ग सभा के अधिवेशन बहुत लम्बे होते थे। कभी शाम से आरम्भ करके रात के बारह बज जाते थे। कभी इससे भी अधिक देर हो जाती थी। मास्टर आत्माराम, लाला तुलाराम, लाला केदारनाथ, लाला सीताराम

आर्य, स्वर्गीय लाला जयचन्द, लाला जीवनदास, मास्टर दुर्गाप्रसाद क दल के नेताओं में से थे। परन्तु उस दल के काम करने वालों में सब से बलवान मस्तिष्क राय पैड़ाराम साहब का था। राय पैड़ाराम साहब की योग्यता और बुद्धि की तीव्रता में किसी को कभी सन्देह नहीं हुआ। बातचीत में वह बड़े धर्मात्मा और देशभक्त थे। व्यक्तिगत चरित्र उनका उच्च था। वह उन दिनों लाहौर में लैंडरेकार्ड के डाइरेक्टर के मुख्य सहायक के पद पर नियत थे। विचार में वह बहुत गहरे थे। किसी व्यक्ति को उनके भीतर घुसकर उनकी चालों के मर्म को समझना ऐसाही कठिन था जैसा कि रायमूलराज की चालों का समझना कठिन था और है। राय पैड़ाराम उस समय महात्मा दल के बड़े स्तम्भ थे।

एक और प्रतिष्ठित सज्जन उन दिनों महात्मा दल से बहुत सहानुभूति रखते थे और उसके नेताओं में गिने जाते थे। उनका शुभ नाम राय लधाराम साहब साहनी था। वह इकज़ीक्यूटिव इन्जीनियर थे। पक्के आर्यसमाजी थे। स्वभाव से भले, अतिथि सत्कार करने वाले और प्रेमी पुरुष थे। परन्तु सीधे थे। बुद्धिमत्ता और नीतिज्ञता का बहुत हिस्सा उनको नहीं मिला था। दूरदर्शी न थे। उत्साही बहुत थे। परन्तु मास्टर दुर्गाप्रसाद जी के दल की बुद्धिमत्ता सम्बन्धी

बागडोर राय पैड़ाराम साहब के हाथ में थी, यद्यपि मास्टर दुर्गाप्रसाद उनकी सलाह पर भी प्रायः न चलते थे।

मास्टर दुर्गाप्रसाद पर अधिक प्रभाव उन लोगों का था जिनको समाज के दो टुकड़ों में बँट जाने से व्यक्तिगत लाभ था, जो मेल की दशा में गिनती में न आते थे और जो दूसरों की अपेक्षा अप्रसिद्ध थे। राय पैड़ाराम यह चाहते थे कि समाज की बागडोर तो महात्मा दल के हाथ में रहे किन्तु शिक्षित समुदाय समाज से बाहर नहीं जावे और उनकी योग्यता, उनके धन और उनके नाम तथा उनकी स्थिति से समाज लाभ उठाती रहे। अतएव एक बार जब अन्तरङ्ग सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि राय मूलराज को समाज से अलग किया जावे तो राय पैड़ाराम ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया और उन्होंने अपनी सम्मति शिक्षित दल के पक्ष में दी। जिसका फल यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। राय मूलराज को महात्मा दल के लोग और राय पैड़ाराम को शिक्षित दल के लोग गवर्नमेंट का भेदिया और दूत समझते और कहते थे। लोगों का विचार था कि यह दोनों सज्जन गवर्नमेंट के संकेत से समाज में फूट डालने का काम कर रहे हैं और समाज की शक्ति को बिगाड़ रहे हैं। राय मूलराज के सम्बन्ध में जो मेरी सम्मति है उसको तो मैं आगे चलकर प्रगट करूंगा परन्तु

राय पैड़ाराम के सम्बन्ध में मैं नहीं कह सकता कि लोगों का बिचार कहां तक ठीक था। इस व्यक्ति की शित्ता तो ऊंचे दर्जे की न थी किन्तु मस्तिष्क उसका अच्छा था। मैं उनसे कई बार मिला। आकर्षण शक्ति उन में बहुत थी। व्यक्तिगत चरित्र उनका बहुत अच्छा था। जिन दिनों में मुझे उनसे परिचय प्राप्त था वह अपने नित्य कर्म में पक्के थे। मांस न खाते थे। मद्य न पीते थे परन्तु जो कार्यवाही उस वर्ष और उसके पश्चात् अपनी मृत्यु तक समाज में की उस से मुझे यह सन्देह होता है कि वह राजनीति में अधिकतर (Jesuit) जिसूट नेताओं के समान थे। लाहौर से बाहर सब से अधिक काम करने वाले महात्मा दल के नेता लाला मुन्शीराम थे। लाला मुन्शीराम स्वयं अपना जीवन चरित्र लिख रहे हैं और इस लिए मुझे यहां पर उनके बारे में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं इतना कहे बिना नहीं रह सकता कि सन् ९२ और ९३ ई० में और उसके बाद कई वर्ष तक लाला मुन्शीराम के सम्बन्ध में मेरा यह विचार रहा कि वह न केवल झगड़ा कराने वाले फ़िसादी हैं बरन् प्रसिद्धि और ख्याति के भूखे और नेता बनने के इच्छुक हैं। आज कल मेरी सम्मति लाला मुन्शीराम के सम्वन्ध में बहुत कुछ बदल गई है और मेरा विचार है कि दलबन्दी के भाव से और दल के हित के लिए जो कुछ लाला

मुन्शीराम ने किया उस आधार पर उनके चरित्र के सम्बन्ध में सम्मति स्थिर करना अन्याय है। ला० मुन्शीराम में भी अन्य बड़े आदमियों के समान कुछ दोष हैं। और .खुशामदी लोग उनके उन दोषों से लाभ उठाते हैं और उनके पास जो आदमी रहते हैं उनका बड़ा प्रभाव उनकी सम्मति और उनकी कार्यवाही पर पड़ता है। वह तबियत के कुछ निर्बल हैं और शीघ्र ही अपनी सम्मति से फ़िसल जाते हैं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि प्रसिद्धि, ख्याति और शक्ति की इच्छा उनमें नहीं है। मुझे सिवाय पण्डित लखपतराय और लाला द्वारकादास के समाज के नेताओं में दूसरा कोई ऐसा नहीं मिला जिसको प्रसिद्धि, ख्याति और शक्ति की इच्छा न हो।

लाला मुन्शीराम स्वाभाविक समालोचक हैं। दूसरों के दोषों को समालोचना का लक्ष्य बनाना उनमें स्वाभाविक है। किन्तु यह सब कुछ कहते हुए भी मैं यह कहने के लिए तैयार नहीं कि वह झगड़ा कराने वाले, फ़िसादी और ईर्षा करने वाले हैं। दलबन्दी के भावों की गरमागरमी में जो सम्मति मैंने उनके सम्बन्ध में स्थिर की थी उसको मैंने बदल दिया और मुझे इस बात का खेद है कि मैंने इस प्रकार की अन्याय युक्त सम्मति उनके सम्बन्ध में कभी स्थिर की। लाला मुन्शीराम भावुक हैं। उनके अन्दर अच्छे और

ऊंचे भाव, बुरे और कमीने भावों की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। वह उदारवृत्ति, आतिथ्य करने वाले हैं। सेवा का ऊंचा भाव रखते हैं। सिद्धान्त के लिये हानि सहना और कष्ट उठाना जानते हैं, आत्मसंयम उनके अन्दर बहुत अच्छा है। वह अच्छे मित्र हैं और अपने मित्रों का साथ देते हैं। बहुत कुछ खुले और स्पष्टवादी हैं और धर्मात्मा भी हैं।

लाला मुन्शीराम उन दिनों सद्धर्मप्रचारक का सम्पादन करते थे और इनकी लेखिनी में बल था। दूसरे दल ने सद्धर्म प्रचारक की प्रतिद्वन्दिता में एक समाचार पत्र निकाला जिसका नाम 'भारत सुधार' था। सालिगराम अरोड़वंश ने यह पत्र निकाला था किन्तु अपनी नीति में वह लाला हंसराज के दल का मुख पत्र था। लाला मुन्शीराम का दल विद्यार्थियों और नवयुवकों में विशेष कर कालेज के विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय था और यह नवयुवक भिन्न भिन्न ढंगों से लाला हंसराज और उनके दल का

लाला हंसराज का दल व्यङ्ग भाव से लाला मुन्शीराम व मास्टर दुर्गाप्रसाद के दल को महात्मा कहता था क्योंकि यह लोग धर्मभाव की पुकार अधिक करते थे। दूसरा दल लाला हंसराज के दल को व्यङ्ग भाव से कलचर्ड (शिक्षित) कहता था, क्योंकि इन लोगों को अपनी शिक्षा और सभ्यता का अभिमान था।

निरादर किया करते थे। दूसरी ओर लाला हंसराज स्वयं तो सदा गम्भीर रहते थे किन्तु उनके प्रशंसक और अनुयायी जिनमें नवयुवक भी सम्मिलित थे ऐसी ही कार्यवाही करते थे।

लाहौर पहुंचने के बाद कुछ समय तक तो मैं यह उद्योग करता रहा कि मैं दोनों दलों से अलग रहूं और दोनों में मेल कराने का द्वार बनूं, किन्तु थोड़े ही समय में महात्मा दल को मुझ पर यह सन्देह हो गया कि मैं लाला हंसराज का चेला हूं और इस में कुछ सन्देह नहीं कि आरम्भ से ही मेरा झुकाव लाला हंसराज की ओर था। उनका त्याग, उनकी देशभक्ति, उनके सरल जीवन ने मेरे हृदय पर बहुत प्रभाव डाला था। मैं उनको आर्यसमाज का नायक समझता था और एक अंश में उनको अत्याचार-पीड़ित समझता था। लाला मुल्कराज का भी मैं प्रशंसक था। राजनीतिक भावों में, देशभक्ति के भावों में मेरा और उन का स्वभाव बहुत कुछ मिलता था। मगर सब से अधिक जिस वस्तु ने मुझे कल्चर्ड दल का पक्षपाती बनाया वह दयानन्द कालेज था। दयानन्द कालेज के सम्बन्ध में महात्मा दल की योजना से मैं बिलकुल सहमत न था, और यह समझता था कि उन के विचारों के अनुसार काम करने से कालेज का नाश हो जायगा, न विद्यार्थी कालेज में रहेंगे और न रुपया आवेगा। मैं इस

समय आर्यसमाज के कार्यक्रम में कालेज को सब से आवश्यक और सब से बड़ा अंश समझता था और महात्मा दल मेरी दृष्टि में कालेज का शत्रु था।

मुझे खेद है कि मैंने प्रसंग को छोड़ कर कुछ बड़े लम्बे चौड़े वाक्य इस कहानी में लिख दिये। तात्पर्य यह कि सारा सन् १८६२ ई० इस झगड़े में कटा और जब मैं देखता हूं कि दोनों दलों ने इस दलबन्दी के प्रवाह में क्या क्या न कहने योग्य कार्यवाहियां कीं, तब मुझे दुःख होता है। एक दूसरे को गाली देना, एक दूसरे पर लाञ्छन लगाना, एक दूसरे को बुरा भला कहना यह तो साधारण बात थी। कुछ कार्यवाहियां इस से भी अधिक की गईं। समाज में सम्मति देने वालों को भिन्न भिन्न ढंगों से बहकाया गया। कुछ का चन्दा दल के कोष से दिया गया। कुछ को अन्य प्रकार से लोभ देकर अपनी ओर किया गया। एक दूसरे की चिट्ठी पत्रियों की चोरी की गई। निजी चिट्ठियों को समाचार पत्रों में छापा गया इत्यादि इत्यादि।

आर्यसमाज के इतिहास के इस भाग पर जब मैं एकान्त में विचार करता हूं तब मुझे इस पर लज्जा आती है। उस समय भी लज्जा आती थी क्योंकि लोग चारों ओर से धिक्कारते थे और कहते थे कि यदि शिक्षित नेताओं की, जिन्होंने देश के सुधार और जाति में धर्म भाव उत्पन्न करने

का बीड़ा उठाया था, यह दशा है, तो दूसरों पर क्या शिकायत हो सकती है। मेरी सम्मति में इस असभ्यता के बवंडर के लिये जैसे लाला मुन्शीराम उत्तरदायी थे वैसे ही लाला हंसराज भी थे। किन्तु आज बीस वर्ष के बाद जब कि मुझ को पश्चिमी देशों के सार्वजनिक चुनाव की दशा की पूरी जानकारी है, मैं इन पुरानी घटनाओं पर दृष्टि डालता हूं तो मेरा विचार है कि जिन सिद्धान्तों पर समाज का विधान बनाया गया था उनके अनुसार ऐसा होना आवश्यक था और समाज उस से बच न सकता था।

नवम्बर सन् १८९२ ई में जब समाज का वार्षिकोत्सव निकट आया तब समाज का घरैलू झगड़ा पराकाष्ठा पर पहुंच गया। कालेज दल ने यह निष्कर्ष निकाला कि मास्टर दुर्गाप्रसाद के दल ने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि सारे उचित और अनुचित ढंगों से न केवल समाज को अपने हाथों में रखें वरन् कालेज पर भी अधिकार जमालें। नवम्बर के महीने में सदा लाहौर की आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा अपने सभासदों का नया रजिस्टर बनाती है। 'सभासद्' उन लोगों को कहते हैं जिनको सम्मति देने का अधिकार हो। अस्तु।

नवम्बर सन् १८९२ ई० में जब लाहौर की अन्तरङ्ग सभा सभासदों के रजिस्टर की पड़ताल करने लगी तो उन्होंने

भिन्न भिन्न ढंगों से अपने दल के सभासद् बढ़ाने और दूसरे दल के सभासद् घटाने आरम्भ किये। प्रत्येक दिनरात का बहुत सा भाग इस झगड़े फ़िसाद में बीतता था। दिन में लोग दफ्तरों में काम करते थे और सभासद् भी बनाते थे और रात का समय झगड़े में बीतता था। अन्त में जब कालेज दल को विश्वास हो गया कि महात्मा दल की नियत "बुरी" है और उन्होंने 'धर्म' और "न्याय" को बिलकुल तिलाञ्जलि देदी है और उनसे औचित्य और सचाई की कार्यवाही की कोई आशा नहीं हो सकती, तब उन्होंने सारी समस्या पर विचार करने के लिये अपने पक्षपातियों की एक सभा की। यह सभा लाहौर के मुहल्ले मुहलियों में स्वर्गीय ला० लालचन्द के मकान पर हुई। दल के सब छोटे और बड़े सदस्य यहां पर उपस्थित थे। अगले दिन इतवार था, अर्थात् यह सभा शनिवार की रात को हुई।

प्रश्न यह था कि अब क्या करना चाहिये। एक पक्ष तो यह कहता था कि पुलिस की सहायता से मन्दिर पर अधिकार कर लेना चाहिये। दूसरा पक्ष कहता था कि अदालत से यह निश्चय करालेना चाहिये कि एक समय उनकी समाज लगा करे और दूसरे समय हमारी समाज। तीसरा पक्ष कहता था कि पुलिस से सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। डण्डों के बल से रात को समाज पर अधिकार करना

चाहिये और यदि अधिकार रखने वाला दल आपत्ति करे तो .खूब लड़ना चाहिये। इस दल में लाला अमरनाथ साहब खंब थे। जहां तक मुझे याद है उस समय वह लाहौर की कमिश्नरी में सुपरिण्टेण्डण्ट या क्लर्क थे। इसके बाद लाहौर के ज़िले के दफ़्तर में सुपरिण्टेण्डण्ट और हेड क्लर्क रहे। बाद में पेन्शन लेकर सब रजिस्ट्रार बने और इस समय गवर्नमैंट के अत्यन्त विश्वासपात्र सलाहकारों में से और जातिभक्त दल के खुले शत्रुओं में से हैं। एक चौथा पक्ष था जिसमें मैं सम्मिलित था, जिसकी यह सम्मति थी कि महात्मादल के साथ मिलकर काम करना असम्भव होगया है, इस लिये उचित मालूम होता है कि उनसे अलग हो जायें और इस समय एक मकान किराये पर लेकर अपने साप्ताहिक अधिवेशन वहां करें, फिर देखा जायगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने उस समय यह कहा था कि समाज ईंट और पत्थर के मकानों का नाम नहीं है वरन् समाज सिद्धान्तों का नाम है। हम अपने आप को सुधारने के लिये और अपनी जाति तथा अपने देश की सेवा करने के लिये समाज में सम्मिलित हुए हैं। मकानों पर अधिकार जमाने के लिये और मकानों के लिये झगड़ा करने के लिये समाज में शामिल नहीं हुए। इसमें सन्देह नहीं कि आप लोगों ने बड़े परिश्रम और त्याग से और बड़े ख़र्च से यह

मन्दिर बनाया है, किन्तु यदि आपके भीतर धर्मभाव है तो आप इस से भी बड़ा मन्दिर बना सकेंगे । मैं समाजमन्दिर पर अधिकार करने का, लड़ने और झगड़ने या मुकद्दमा करने का, या पुलिस या अदालत से सहायता लेने का घोर विरोधी हूं। यद्यपि ला० हंसराज को मन्दिर का छोड़ना दुःखदायी था, तो भी अन्त में जब उन्होंने लाला लालचन्द का झुकाव भी मेरे पक्ष में पाया तो वह भी इसी मत में मिल गये और सर्व सम्मति से यही निश्चय हुआ कि हम दूसरे दल से अलग होकर अपना काम करें।

अतएव इस निश्चय को व्यवहार में लाने के लिये अगले दिन भगत ईश्वरदास के मकान पर, जो अनारकली के आरम्भ में लोहारी दरवाजे से निकलते हुए दाहिने हाथ पर था, हमारे दल के सभासदों की एक सभा की गई, और वहां पर अलग होने का प्रस्ताव नियमपूर्वक पास करके नए पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। मुझको सभापति बनाया गया और एक साहब बुड्ढामल को, जो उस समय जंगलात के महकमे में हेड क्लर्क या सुपरिण्टेण्डेण्ट थे, मन्त्री नियत किया गया। यह मकान जहां पर इस समय अनारकली समाज का मन्दिर बना हुआ है, एक अहाते के ढंग से पड़ा हुआ था। जिस भाग में इस समय मन्दिर है उसके एक कोने में एक बरामदा और एक कोठरी बनी हुई थी. और

उसके आगे सफेद भूमि पड़ी हुई थी। जिस ओर पुस्तकालय है वहां एक कोने पर एक और कोठरी थी। अगला हिस्सा दुमञ्जिला बना हुआ था और किराए पर था। इस दो मंज़िल मकान की नीची मंज़िल में अरोड़वंश छापाखाना था, जहां से उस समय "भारत सुधार" समाचारपत्र निकला करता था, जो हमारे दल का मुख्य पत्र समझा जाता था। समाज के अधिवेशनों के लिये भीतर का मकान और आँगन किराये पर लिया गया और वहां समाज के साप्ताहिक अधिवेशन होने आरम्भ हुए।

लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव की तारीख़ निकट थी। कदाचित् उस में दो या तीन सप्ताह ही बाक़ी थे और हमारे सामने यह प्रश्न था कि हम जलसा करें या न करें। जलसा न करने का यह अर्थ था कि हम अपनी निर्बलता और अशक्तता को स्वीकार कर लें और यह मान लें कि असल समाज वह है जिस के अधिवेशन बच्छोवाली में होते हैं। दल की सर्व साधारण सम्मति इस मत के विरुद्ध थी, किन्तु दूसरी ओर व्यय का और काम का प्रश्न था। अन्त में यह निश्चय हुआ कि उत्सव किया जावे। अस्तु।

उत्सव की तैयारियां आरम्भ की गई। लाहौर की समाज का वार्षिकोत्सव उस समय भी बड़ी धूमधाम से

हुआ करता था और इस कारण से कि समाज का मकान उसके लिये अपर्याप्त था, उत्सव दयानन्द हाईस्कूल के इहाते में हुआ था। स्कूल हमारे दल के अधिकार में था, इस लिए उत्सव करने में कोई कठिनाई न थी। अतएव उत्सव करने का निश्चय प्रकाशित किया गया और उसकी तैयारियां आरम्भ की गई। मुझे अच्छी तरह से याद है कि उन दिनों रातों जागना पड़ता था। दिन में कचहरी का काम था। कालेज के मंत्री पद का काम भी मेरे सुपुर्द था और इस "नई" समाज की प्रधानी का काम भी अब मेरी गर्दन पर था। इस के अतिरिक्त दल के विरुद्ध जो झूठे लाञ्छन लगाए जाते थे उनको मिटाने, उनका व्याख्यान द्वारा अथवा लिखित उत्तर देने का काम भी बहुत कुछ मुझे करना पड़ता था। उस समय दल में ऐसे आदमी कम थे जो उर्दू में लिखने का काम अच्छी तरह से कर सकते हों। अस्तुः—यह तो प्रसंग से हट कर बातें हुईं।

मैं पहले लिख चुका हूं कि इस समय मेरी स्मरणशक्ति मुझे इन घटनाओं का वर्ष निश्चित करने में सहायता नहीं देती, किन्तु मेरा अनुमान यह है कि यह सब कुछ सन् ९२ ई० में हुआ। नवम्बर सन् ९२ ई० में समाज के उत्सव में बहुत विघ्न रहा। धर्मचर्चा के समय में लोगों ने मांस का प्रश्न छेड़ दिया। उस समय ला० मूलराज ने मांस के पक्ष में अपनी

सम्मति प्रकट की और महात्मा दल के उत्साही नवयुवकों और लड़कों ने उसके विरुद्ध डण्डा उठाया। लाला हंसराज को जो उस समय प्रधानी का काम करते थे बहुत बुरा भला कहा गया। मैंने स्वयं अपनी आँख से यह सब कुछ देखा। मेरा हृदय समाज की यह दशा देख कर पिघल जाता था और मैं रातों जागता हुआ यह विचार करता था कि कदाचित् हमारे जातीय रोग फूट की दवाई ईश्वर के पास भी नहीं है। हम ने इस फूट को दूर करने के लिये एक परमात्मा की शरण ली और उस की पूजा आरम्भ की, परन्तु हमारे कलुषित हृदय और दुराचरण तथा कुकर्मों ने यहां भी डेरा आ जमाया और उस का परिणाम यह हुआ कि जाति में एकता और मेल स्थापित करने के बदले हम आपस में ही लड़ पड़े और लड़े भी बुरी तरह और ऐसी मूर्खता से कि जिस की कोई सीमा नहीं॥

सन् ९१ ई० के सालाना जलसे के बाद जब मैं हिसार लौट कर गया तब मेरी आत्मा बहुत दुःखी थी और मेरा हृदय फटा जाता था। अस्तु। समाज की इस दशा और मेरी भीतरी बेचैनी ने भी मुझे हिसार को छोड़ कर लाहौर चले आने पर मजबूर किया। सन् ९२ ई० का वर्ष जिस खींचातानी में कटा उसका मैंने ऊपर उल्लेख किया।

मैंने बच्छोवाली समाज के उन सभासदों के नाम लिखे

हैं, जो उस समय लाहौर में महात्मा दल के उत्साही सदस्य थे, इस लिये मुझे यह उचित जान पड़ता है कि मैं अपने दल के भी उत्साही सदस्यों के नाम लिखूं। स्वर्गीय लाला लालचन्द, भक्त ईश्वरदास तो दल के नेताओं में से थे। लाला शौकतराय, बाबा छज्जूसिंह, मेहता राधाकृष्ण, बाबा तेजसिंह, लाला अमीरचन्द, लाला सुखदयाल, लाला हरनामदास, लाला रामसहाय, यह दूसरी श्रेणी के नेताओं में गिने जाते थे।

लाहौर से बाहर दल के नेताओं का विभाग निम्न लिखित था—

शहर	महात्मा दल	कल्चर्ड दल
पेशावर	स्वर्गीय डा. सीताराम; ला. सुर्जनलाल और लाला मूलचन्द तांबा।	स्वर्गीय बख्शी गोकुलचंद, बा. रलाराम और ला. गज्जूमल।
रावलपिंडी	लाला गंगाराम वैद्य, सीताराम और लाला कृपाराम साहर्नी।	स्वार्गीय लाला हंसराज साहनी, स्वर्गीय ला. हरिराम सेठी और स्वर्गीय लाला मयादास साहनी।
एबटाबाद	...	सेठ चूहड़लाल।
गूजरखां	लाला रलाराम।	...

मियानी	लाला ज्वालासहाय ।	...
झेलम	...	ला. हरभगवानदास और मा० बोधराज
गुजरानवाला	लाला केवलकृष्ण और लाला नारायण कृष्ण ।	...
अमृतसर	स्वर्गीय पं० धर्मचंद कौल ।	लाला गोपालदास भंडारी और पंडित शिवदत्त ।
जालन्धर	लाला मुन्शीराम, लाला देवराज, लाला रामकृष्ण और रायज़ादा भक्तराम।	...
होशियारपुर	...	मास्टर मुरलीधर, स्वर्गीय महा० रामचंद्र, ला. ठाकुरदास (जो अब सनातनी हैं)।
फीरोज़पुर	...	चौधरी बिशन सहाय स्वर्गीय पं० मूलराज और ला० दीनदयाल।
हिसार	...	पंडित लखपतराय ।
लुधियाना	लाला उमरावसिंह ।	...
अम्बाला शहर	...	लाल द्वारकादास ।

अम्बाला छावनी	लाला गुरांदित्तामल	...
मुलतान	स्वर्गीय लाला काशीराम।	लाला चेतनानन्द।

यह सूची बहुत अपूर्ण है किन्तु इस समय जो नाम मुझे याद हैं वह मैंने लिख दिये हैं, जिस से अगली पीढ़ियों को आर्यसमाज की इस अन्धेरी रात्रि का अनुमान करने में सहायता मिलेगी। मुझे विश्वास है कि लाला मुन्शीराम के कागज पत्र अधिक पूर्ण होंगे और वह इस सम्बन्ध में अधिक पूर्ण सूची दे सकेंगे।

अन्त में नवम्बर सन् १८९२ के वार्षिकोत्सव अलग् अलग् हुए। उस समय दोनों दलों में ईर्षा द्वेष और शत्रुता की आग भभक रही थी। दोनों ओर के नवयुवक भड़के हुए थे। महात्मा दल इस बात से बहुत अप्रसन्न था कि कालेज के पदाधिकारियों ने कालेज के मकान को, जो दोनों की सम्मिलित सम्पत्ति था, एक अनियमित उत्सव के लिये दे दिया है। यह लोग हमारे दल के समाज को नियम विरुद्ध और अनुचित समझते थे। रात को दोनों दल अपने अपने मकानों पर पहरा रखते थे। जहां तक मुझे याद है कि दिन में भी इन स्थानों में पोलीस आती थी।

शुक्र की रात को दो बजे तक हम लोग अपने मकान की सजावट करते रहे। प्रातः काल छः बजे फिर आ उपस्थित हुए। दिन भर उत्सव की कार्यवाही थी। सायंकाल

छः बजे के लगभग आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। यह अधिवेशन अगले दिन प्रातः काल पांच या छः बजे तक होता रहा। दोनों दलों ने एक दूसरे को हानि पहुंचाने के लिये कोई बात उठा नहीं रक्खी। उस समय महात्मा दल की बहुतायत थी। इस लिये कालेज दल के पास रुकावट के सिवाय और कोई उपाय न था। अधिवेशन स्कूल के कमरे में कोई निश्चय किये बिना ही समाप्त हुआ। रविवार को मैंने कालेज के लिये अपील की। इस उत्सव में शनिवार या रविवार को राय मूलराज का व्याख्यान आर्यसमाज पर हुआ। सारे स्थानों पर आदमी ही आदमी थे। व्याख्यान में कोई विघ्न नहीं हुआ और उत्सव सफलता से समाप्त हुआ।

इस साल की समाप्ति पर आर्यसमाज के दोनों दलों की स्थिति नीचे लिखे अनुसार थी। लाहौर समाज में दोनों दल अलग हो चुके थे। पुराने समाज का मंदिर और उसके रजिस्टर और पुस्तकालय महात्मा दल के अधिकार में थे। और कल्चर्ड समाज एक किराये के मकान में अपनी समाज का अधिवेशन करता था।

आर्यप्रतिनिधि सभा के सब पद और उसके कागज पत्र महात्मादल के पूर्ण अधिकार में थे। कालिज और कालिज की सब सम्पत्ति कल्चर्डदल के अधिकार में थी। अस्तु!

नए वर्ष के आरभ होते ही दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हुआ। समाचार पत्र, उपदेशों तथा व्याख्यानों के स्थान इस युद्ध के मैदान थे। कालेज को आक्षेपों से बचाने के लिए मैंने एक मासिक पत्र निकाला जिसका नाम "दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज समाचार" था! परलोक-वासी ला० लालचन्द भी इस में लिखा करते थे। किन्तु अधिक भाग इसका मुझे ही लिखना पड़ता था। महात्मा दल कालेज के प्रबन्ध पर इस आधार पर आक्रमण करता था कि इस में संस्कृत का यथेष्ट प्रचार नहीं होता था। इस दोषारोपण के उत्तर देने के लिए मैंने एक २०० पन्ने की पुस्तिका लिखी, जिसमें यह दिखलाया गया कि आरम्भ से लेकर आज तक, अर्थात् इस पुस्तिका के प्रकाशन के समय तक कालेज ने संस्कृत तथा हिन्दी के प्रचार के लिए क्या कुछ किया। "दयानन्द कालेज में संस्कृत की तालीम पर एक तारीख़ी नज़र (ऐतिहासिक दृष्टि) इस पुस्तिका का नाम था। इस के अतिरिक्त 'भारत सुधार' में भी मैं प्रायः लिखा करता था और "आर्य मेसेञ्जर" नामी अंग्रेजी समाचार पत्र में भी, जो आर्य पत्रिका के विरोध में निकाला गया था, मैं लिखता था। परन्तु मेरे समय का अच्छा भाग और लगभग सब अदालत की छुट्टियां, कालेज के लिए चन्दा जमा करने में, बाहर जाकर कालेज के लिए अपील करने में लगतीं थीं।

अस्तु ! एक बार मैं शिमला से सीधा पेशावर पहुंचा, क्योंकि यदि मुझे चन्द घण्टे की भी देरी हो जाती तो पेशावर से कालेज को कुछ चन्दा न मिलता। मैंने दो दिन में वहां से तीन हज़ार रुपया नकद जमा किया। इतने में महात्मा दल का डेपुटेशन आ पहुंचा और कालेज का चन्दा बन्द हो गया।

सन् १८९३ ई० में मेरे ऊपर नीचे लिखी ज़िम्मेदारियां थीं—

१. मैं कालेज कमेटी का प्रधान मन्त्री था।

२. लाहौर के शिक्षित (कल्चर्ड) दल की आर्य समाज का प्रधान था।

३. "दयानन्द ऐंग्लो वैदिक समाचार" पत्र का सम्पादक था।

४. "भारत सुधार" और आर्य मेसेंजर" का लेखक था। कई बार मुझे सारा "भारत सुधार" लिखना पड़ता था।

५. कालेज के लिए दौरा करता था।

६. इस के अतिरिक्त वकालत से रोटी कमाता था और पहली पंजाब कांग्रेस की स्वागत समिति का काम करता था और उसकी बैठकों में प्रायः सम्मिलित होता था। इसके अतिरिक्त समय का बहुत भाग उन सभाओं में सम्मिलित होने में लगता था जो मेल जोल कराने के

अभिप्राय से भिन्न भिन्न स्थानों और भिन्न भिन्न अवस्थाओं में की जाती थीं और जिनमें अपरिमित वाद विवाद के बाद परिणाम कुछ न निकलता था।

सन् ९३ से लेकर मार्च ९७ ई० तक दोनों दलों में बहुत खींच तान जारी रही। बाहर कई स्थानों में दो दो समाजें हो गईं। कल्चर्ड दल ने अपनी प्रतिनिधि सभा अलग् बनाई। सारांश यह कि पृथक् संगठन पूरा हो गया।

कालेज दल ने कालेज को सुरक्षित करने के लिये पहली कार्यवाही तो यह की कि अपनी अधिक सम्मति से यह निश्चय किया कि कालेज की प्रबन्धक समिति में उन समाजों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है जो कालेज के लिए चन्दा जमा करती हैं। महात्मा पार्टी ने अपनी समाजों में कालेज के लिए अपील करना बन्द कर दिया। यह निश्चय उन समाजों से सम्बन्ध रखता था जो दो भागों में विभक्त हो चुकी थीं। कालेज दल के सामने यह प्रश्न था कि वह कालेज को महात्मा दल के हवाले करके अलग हो जावे अथवा कालेज को इसी तरह चलावे जैसा कि वह इस समय चलता था, महात्मा दल की पाठ्य-प्रणाली से वे सहमत न थे और उसको स्वीकार करने के लिए वह तैयार न थे। उनकी सम्मति में पञ्जाब की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह कालेज

यूनिवर्सिटी के साथ सम्बन्ध रक्खे और यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं के लिये विद्यार्थियों को तैयार करे। जातिभक्ति और देशभक्ति दोनों उस समय उससे पूरी हो सकती थीं। कॉलेज की समिति के नेताओं ने बहुतसी क़ानूनी छानबीन के बाद यही निश्चय किया कि जहां-जहां समाजें दो भागों में विभक्त हो गई हैं, वहां केवल उस समाज को कॉलेज में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा जो कॉलेज के लिये अपील करेगी और जो कालेज को अपने कार्यक्रम में मुख्य मानेगा। यह बात स्वाभाविक थी कि इस निश्चय से महात्मा-दल में उद्वेग पैदा हो अस्तु:—

मई में जब कॉलेज का वार्षिक अधिवेशन होना था महात्मा-दल ने डंडे के बल से कॉलेज पर अधिकार करने का यत्न किया और महात्मा-दल की एक बड़ी टोली यह भजन गाती हुई स्कूल की तरफ़ आई "धर्म के लिये जान जाती है तो जाने दो"। कॉलेजवालों ने स्कूल के बाहरी द्वार बन्द कर दिए थे और इन्होंने यह निश्चय किया था कि सभा के वार्षिक अधिवेशन में वही सम्मिलित हो सकेंगे, जिन के पास मन्त्री के हस्ताक्षर का सार्टीफ़िकेट होगा कि वह सभा के नियमों के अनुसार सभा के नियमित सदस्य हैं और उसमें सम्मति देने का अधिकार रखते हैं। महात्मा-दल बल पूर्वक प्रवेश करने के विचार से

आया और जब उन्होंने द्वार बन्द पाया और बलपूर्वक द्वार तोड़ने का यत्न किया तो दोनों दलों में मुठ भेड़ हो गई और डण्डा चलने लगा। परलोकवासी लाला सुन्दरदास का सर फट गया। उनके भाई लाला गोपालदास के चोट आई। और भी, सम्भवतः एक दो आदमियों के चोट लगी। अधिवेशन स्थगित रहा और दोनों दलों ने अपना-अपना बयान पुलिस में लिखवा दिया। अगले दिन एक बहुत ज़ोरदार अधिवेशन हुआ। वादविवाद गरमागरम होता रहा और अन्त में जब उपस्थित सदस्यों की बहु सम्मति से महात्मा-दल के विरुद्ध निश्चय हो गया तब तो वह अधिवेशन से उठकर चले गए और अपने मन्दिर में जाकर उन्हों ने कॉलेज को छोड़, वेदप्रचार कोष स्थापित करने का निश्चय किया।

दोनों दलों का शिक्षा-सम्बंधी काम अलग हो गया परन्तु दोनों में युद्ध की समाप्ति नहीं हुई। आर्यजनता जिस की सहायता के दोनों इच्छुक थे और जिसके सहारे दोनों काम करते थे, एक ही थी, इसलिए दोनों के लिये आवश्यक था कि वह अपने-अपने विचारों का प्रचार करें। इस कार्यवाही में और इस घरेलू युद्ध में जहाँ दोनों दलों ने बहुत बुरे और न कहने के योग्य काम किए एक दूसरे पर अपराध लगाए, एक दूसरे पर दोष लगाए, वाणी का दुष्प्रयोग किया,

लेखनी का भी कुव्यवहार किया, वहां हिम्मत उत्साह और साहस से उन्होंने समाज की सेवा में वह त्याग किये जो इतिहास में पूछने योग्य हैं और सदा याद रहेंगे। बूढ़े और युवक अमीर-ग़रीब सबने अपनी शक्ति और हैसियत से बढ़कर काम किया। कॉलेज की सहायता के लिए एक-एक महीने की आमदनी पहिले दे ही चुके थे। बहुत से नियमित रूप से मासिक चन्दा भी देते थे, किन्तु अब फिर नए सिरे से चन्दे लिए गए और सबने खुशी-खुशी दिए। महात्मा-दल ने वेदप्रचार कोष, कन्या महाविद्यालय और स्थानीय स्कूलों के लिए उसी हौसले से चन्दे दिए। लोगों को तो यह सन्देह होने लगा कि कदाचिद् दल अपने चन्दे बढ़ाने के लिए ही लड़ रहे हैं।

दल की सेवा में कॉलेज के एक उत्साही युवक स्वर्गीय ला० सुन्दरदास जी ने (स्वर्गीय लाला सांईदास के बड़े पुत्र थे) अपनी जान तक गँवा दी। इसी तरह से महात्मा-दल के एक उत्साही युवक लाला लब्भूराम ने अपने आपको अपने दल की सेवा में बलि दे दिया। इसी समय में मैं भी एक बार मौत के द्वार तक पहुँच गया। दो महीने तक निमोनिया के रोग से पीड़ित रहा। दोनों फेफड़े गल गए। एक बार से अधिक मैं मौत के द्वार तक पहुँच गया। इस बीमारी में डाक्टर बेलीराम साहब ने जिस परिश्रम

और प्रेम से मेरी चिकित्सा की उसके लिए मैं सदा उनका ऋणी रहूँगा। ला० हंसराज और लाला मुन्शीराम ने भी अपने २ दायित्वको बहुत उत्साह जवांमर्दी और सहनशीलता से निभाया और अपने-अपने दल की सेवा में अपने आपको मिटा दिया। परलोकवासी लाला लालचंद ने कॉलेज की सेवा में और परलोकवासी राय पेड़ाराम ने महात्मा-समाज की सेवा में बहुत बड़ा भाग लिया।

---

(१०)

पंडित लेखराम का आत्मबलिदान

पंडित लेखरराम की हत्या मार्च सन् ,९७ में हुई। यह घटना आर्य्यसमाज के इतिहास में स्मरणीय है। पण्डित लेखराम अपने धार्मिक विश्वास के कारण एक मुसलमान के हाथ से मारे गये इस दृष्टि से उन को शहादत (वीर-गति प्राप्त) का पद मिला। इस दृष्टि से वह आर्य्यसमाज में पहले शहीद हुए, और अब तक और कोई नहीं हुआ। पण्डित लेखराम की हैसियत मेरी राय में यह है कि वह बहुत जोशीले आर्य्यसमाजी थे। अपमे विश्वास के पक्के थे। फ़ारसी और अरबी की जानकारी उनकी अच्छी थी। उर्दू भी अच्छी खासी लिखते थे। उन का निजी चरित्र बहुत ऊँचा था और समाज के पूरे भक्त थे। स्वामी जी के भी भक्त

थे। वह किसी समय पुलिस की नौकरी में थे। नौकरी छोड़कर आर्य्यसमाज का काम करने लगे। प्रतिनिधि सभा इनको निर्वाह के लिये कुछ वेतन देती थी। किन्तु पुलिस की नौकरी में इन्होंने जो आदत एकरौ होने की प्राप्त की थी वह आदत इन्होंने धार्मिक खोज में भी नहीं छोड़ी। उनमें स्वतन्त्र खोज और न्याय के गुण थे। इन्होंने इस्लाम और ईसाइयत के खण्डन से हिन्दुओं की बहुत बड़ी सेवा की। जिस तरह मुसलमान मौलवी व ईसाई, पादड़ी हिन्दू-धर्म के निर्बल अंगों पर आक्रमण करते थे और अपने प्रमाण में केवल वही हवाले देते थे जो हिन्दू धर्म के समालोचकों ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध लिखे थे इसी तरह पंडित लेखराम भी इसलाम और ईसाइत के बलहीन अङ्गों पर आक्रमण करते थे और उनके विरोधियों के प्रमाणों के आधार पर उनके टुकड़े उड़ाते थे। पंडित लेखराम की किताबें इस एकरौपन से भरी हैं। आर्य्यसमाज में इस प्रकार की समालोचना के अग्रगणी वह थे। और यद्यपि आरम्भ में आर्य्यसमाज को हिन्दू धर्म के बचाव में इस प्रकार की समालोचना लाभदायक हुई, किन्तु इस भाव ने आर्य्यसमाज में स्वतन्त्र और न्याययुक्त खोज के भाव को फैलने से रोका।

पंडित लेखराम सरहद के रहने वाले थे। इनकी वाणी में वह मर्यादा न थी जो सभ्य घराने के लोगों में होती है।

पंजाबी महाविरे में वह अक्खड़ थे और जो उनके मन में आता था वह कह देते थे। किन्तु उनके हृदय और वाणी की सचाई पर किसी को सन्देह नहीं हुआ। स्वामीजी पर इनको पूरा विश्वास था और यद्यपि वह स्वामीजी को भूलों से परे समझने के लिये तैयार न थे, किन्तु मुझे याद है कि एक वार अजमेर में राय मूलराज ने यह कह दिया कि मांस के विषय में स्वमीजी ने जैनियों के दबाव में आकर अपनी राय बदल दी तो पण्डित लेखराम की आंखों से आँसू निकल पड़े और वह एकबारगी रोने लगे। स्वामीजी के व्यक्तित्व पर जब कोई हमला करता था तो वह आपे से बाहर हो जाते थे।

मुसलमानों से हिन्दुओं को बचाने में और नव-मुस्लिम हिन्दुओं को वापिस लाने में जो सेवा उन्होंने हिन्दू जाति की की है, वह सुनहरे अक्षरों में लिखे जाने योग्य है और अद्वितीय है। और जब हम याद करते हैं कि निर्भय होकर इस सेवा को पूरी करने में उन्होंने अपनी जान गंवाई तो तो हमको यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि पंडित लेखराम आर्य्यसमाज के सच्चे शहीद थे! वह अपने विचारों का बेधड़क प्रचार करते थे। मुसलमानों की ओर से उनको कई बार धमकियां मिल चुकीं थीं और यह मालूम था कि कट्टर मुसलमान मौलवी उनके खून के प्यासे हैं किन्तु

जिस तरह से उनकी जान ली गई वह सदा के लिये इस्लाम पर धब्बा रहेगा। उनका मारने वाला शुद्धि के लिये उनके पास आया। उसको उन्होंने अपने घर में रखा और सब कर्त्तव्य आतिथ्य सत्कार के पूरे किए। उनके घर में वह खाना खाता रहा और अन्त में इस आतिथ्य सत्कार का बदला उनको यह दिया कि एक दिन अवसर पाकर उस ने छुरी उनके पेट में घौंपादी और भाग निकला। इस घटना ने साधारणतः उत्तरीय भारत की हिन्दू जनता में और विशेषतः लाहौर और पञ्जाब में बहुत आवेश उत्पन्न किया। हिन्दू जनता धार्मिक विचारों का भेद भाव छोड़ आर्य्यसमाज के साथ थी। पण्डित लेखराम की अर्थी के साथ हमने जितनी भीड़भाड़ देखी है वह आज तक लाहौर में और किसी अर्थी के साथ नहीं देखी। लोगों का विचार था कि हजूम में लोगों की भीड़ २० और ५० सहस्र के बीच थी। अर्थी मेडिकल कालेज से निकली क्योंकि उन के प्राण हस्पताल में निकले थे जहां वह घटना के बाद तुरन्त ही पहुँचा दिए गए थे। हिन्दू जनता ने पण्डित लेखराम को ऐसी पदवी देकर इनका मान किया और सहस्रों स्त्रियोंने उनके शवपर फूलों और बताशों की वर्षा की और फिर उनकी अर्थी के फूलों को पवित्र समझकर अपने घर लेजाकर रखा। इस वीर-गति का पहला परिणाम यह हुआ कि श्मशान भूमि में

स्वर्गीय वीर के शव के सामने उसको बीच में रख कर दोनों दलों ने फिर इकट्ठा हो जाने का पूरा विचार किया। लाला मुन्शीराम ने उस समय जो वक्तृता दी वह उनके योग्य थी। अस्तु। हत्या के बाद जो रविवार आया उसी दिन दोनों समाजों का सम्मलित अधिवेशन बच्छोवाली आर्य्यसमाज के मन्दिर में लाला हंसराज के सभापतित्व में हुआ। इस मेल की प्रारम्भिक कठिनाइयां मेरे मकान पर तय हुईं और महात्मा दल ने इस बात को स्वीकार किया कि मांस का झगड़ा समाप्त कर दिया जाय और लाला हंसराज को पहले के अनुसार मिली हुई समाज का प्रधान बनाया जाय। इसके अतिरिक्त पंडित लेखराम की हत्या करने वाले का पता लगाने के लिये एक कमेटी बनाई गई जिसका काम मेरे सुपुर्द किया गया। उन दिनों में मुझे बहुत बार इस काम को पूरा करने के लिये सुपरिनटेण्डेण्ट पुलिस से मिलने का अवसर हुआ। पुलिस ने अपने दूत और समाज ने अपने दूत हत्यारे का पता लगाने के लिये छोड़े किन्तु मुसलमानों ने कोई यत्न सफल होने न दिया। दो तीन आदमी भिन्न भिन्न अवसरों पर गिरफ्तार किए गए किन्तु वह पहचाने न जाने के कारण छूट गये। लोगों को उस समय पूरा विश्वास था, और उस विश्वास के उचित कारण थे, कि लाहौर के मुसलमानों की सहानुभूति हत्यारे

के साथ थी और यह हत्या एक बड़ी गुप्त गोष्ठी का परिणाम था जिस में लाहौर के कुछ मुसलमान मौलवी और रईस सम्मिलित थे जिन्होंने हत्या के बाद अपराधी की रक्षा की और उस को साफ निकाल दिया। सारांश यह कि मेरी राय में लेखराम के हत्यारे का पता न लगना मुसलमानी प्रेम और एकता का एक अच्छा उदाहरण है जिस पर यदि वह अभिमान करें तो उचित है।

पण्डित लेखराम की हत्या पर जो मेल दोनों दलों में हुआ था वह बहुत समय तक स्थापित न रहा। उसका कारण यह था कि यह मेल केवल भावुक था और उस शोक से पैदा हुआ था जो पण्डित साहेब की हत्या से दोनों दलों को हुआ। परन्तु दलों के विचारों की लहर अभी तक अलग अलग बहती थी। प्रतिनिधि-सभा की बागडोर महात्मा दल के हाथ में थी और कालेज की बाग शिक्षितदल के हाथ में थी। दोनों को एक दूसरे पर भरोसा और विश्वास न था। दोनों यह समझते थे कि विरोध पक्ष वाले अपनी शक्ति और अपने प्रभाव को, हमको कुचलने के लिये काम में ला रहे हैं। इस के अतिरिक्त महात्मा दल के नेताओं का यह विचार था कि यदि यह मेल कुछ वर्ष स्थापित रहा तो कम से कम लाहौर से महात्मा दल का प्रभाव उठ जायगा।

मुझको यह बताया गया था कि राय पेड़ाराम साहब

ने एक अधिवेशन में यह विचार इसी तरह प्रकट भी कर दिए थे। सारांश यह कि इन नये अविश्वासों का परिणाम यह हुआ कि फिर लाहौर में दो समाजें होगईं और शिक्षित-दल अपने अधिवेशन अनारकली में करने लगा। जिस समय यह दूसरा विच्छेद हुआ मैं बहुत बीमार था और लाहौर से बाहर था।

जब स्वस्थ होकर मैं वापिस लाहौर में आया तो दोनों समाजें अलग अलग अधिवेशन करती थीं।

...　　　...　　　...

सन् ९७ ई० के आरम्भ में मध्य प्रदेश में एक महान अकाल पड़ा हुआ था। हज़ारों आदमी भूख से मरते थे लाहौर में यह खबर पहुँचने लगी कि ईसाइयों के दीनाश्रम और अनाथ शिशु आश्रम भरे जारहे हैं विशेष कर बच्चे बहुत मर रहे हैं और ईसाइयों के हाथ में भी जारहे हैं। यह समाचार सुन कर मेरे हृदय पर बहुत ठोकर लगी और मैंने मध्यप्रदेश के अनाथ बच्चों को बचाने के लिए एक आन्दोलन आरम्भ किया। अनारकली समाज की संरक्षकता में आन्दोलन आरम्भ किया गया किन्तु थोड़े ही समय में कुल हिन्दुओं में फैल गया। लाहौर में हिन्दू अनाथ बच्चों की सहायता के लिए एक नई सभा बनाई गई जिस में हिन्दू सनातनी और ब्रह्मसमाजी भी सम्मिलित थे। जबलपुर,

बिलासपुर इत्यादि से कई अनाथ बालक मँगाए गए और लाहौर तथा अन्य स्थानों में इनके पोषण के लिए कई अनाथ शिशु आश्रम खोले गए। लाहौर का अनाथ शिशु आश्रम भी उसी समय खोला गया था। मुझे याद है कि जिस दिन अनाथ शिशुओं का पहिला झुण्ड लाहौर में आया, कई हज़ार आदमी लाहौर के स्टेशन पर इनको देखने के लिए उपस्थित थे और नगर में हिन्दू सहानुभूति की नदी बह रही थी। अगस्त तक मैं यह काम करता रहा। अगस्त में कुछ दिन आराम करने के लिए ऐबटाबाद गया। वहां पर मुझे एक दिन वर्षा में भीग जाने के कारण ज्वर हो गया। इसी ज्वर के साथ जिगर बढ़ गया और मैं लगभग मई सन् ९८ तक इसी बीमारी में रहा।

... ...

यद्यपि धार्मिक शिक्षा मुझे छोटी अवस्था से मिली थी और आरम्भ से ही मैं थोड़ी बहुत धार्मिक चर्चा सुनता रहा और धार्मिक पत्र इत्यादि पढ़ता रहा तो भी धार्मिक प्रश्नों की छानबीन और धार्मिक अध्ययन का प्रेम मुझ में कभी जागृत नहीं हुआ। मुझे जहां तक याद है मैं यही कह सकता हूँ कि मेरी तबियत का झुकाव आरम्भ से ही काम की ओर था और छोटी अवस्था में जिन किताबों ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला और जिनको मैं बार बार पढ़ा करता

था वह 'कसस हिन्द' और फ़िर्दौसी का 'शाहनामा' थीं। गुलिस्तां में से जिस शेर ने मेरी स्मरण शक्ति को पकड़ा और मेरी कल्पना पर अधिकार जमाया वह यह था—
"आं न मन् बाशम् कि रोजे जङ्ग बीनी पुश्तमन्। ईमनम् कां दरमियाने ख़ाके खूं बीनी सरे।"*

मेरे पिता मुझे निजी रीति से फ़ारसी बहुत पढ़ाई और मुझे याद है कि सारे फ़ारसी साहित्य में जो मेरे पिता ने मुझे पढ़ाया मुझ पर सब से अधिक प्रभाव सिकन्दरनाम और शाहनामे का पड़ा। उर्दू की किताबों में से जिन किताबों को मैं बहुत प्रेम से पढ़ता था वह "रसूमे हिन्द" और 'कसस् हिन्द' थीं। मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ाद लिखित 'क़सस हिन्द' के दूसरे भाग के उन अंशों को मैंने कई बार पढ़ा जिन में उन्हों ने राजपूतों के साहस की प्रशंसा की है। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन ख़िलजी के आक्रमणों का वृत्तान्त, हुमाऊँ के दुःखों का चित्र, अकबर की जीतों का बयान मेरे हृदय पर पत्थर की लकीर की तरह गड़ गया। मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ाद के 'कसस हिन्द' ने सब से पहिले मुझे हिन्दू वीरता का आदर करना सिखलाया और

---

* इसका यह अर्थ है—मैं वह नहीं हूं कि लड़ाई के दिन तू मेरी पीठ देखे। मैं यह हूं कि मिट्टी और .खून के बीच तू मेरा सर देखे॥"

मेरे हृदय में हिन्दुओं के लिये अभिमान का भाव पैदा किया। मुझे 'क़सस हिन्द' के साथ एक तरह का प्रेम पैदा होगया जिस का प्रभाव सदा मेरे जीवन पर गहरा रहा। जिस दिन से यह किताब मेरे हाथ में आई उस दिन से लेकर आज तक राजपूतों की कृतियों के जानने की अभिलाषा कभी एक क्षण के लिये भी मुझ से अलग नहीं हुई। जिस समय मैंने मुख़्त्यारी की परीक्षा पास कर के कानूनी काम करना आरम्भ किया तब पहिली किताब जो मैंने मोल ली वह टाड साहब का राजस्थान का इतिहास नामक पुस्तक थी। उन दिनों सरकारी मदरसों में उर्दू की तारीख़ हिंदुस्थान का इतिहास पढ़ाया जाया करता था जिसका नाम 'वाक़याते हिन्द' था। इस इतिहास ने मेरे दिल पर यह भाव पैदा किया कि मुसलमानों ने हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार किये हैं। जो आदर मुझे इस्लामी धर्म के लिये अपनी प्रारम्भक शिक्षा के कारण था वह धीरे धीरे 'वाक़याते हिन्द' के पढ़ने से घृणा में बदलने लगा। यहां तक कि जब मैं लाहौर में आया तो मेरी तबियत इस्लाम से बिलकुल फिर गई। लाहौर में जो संगत मुझे मिली उसने न केवल इस्लाम धर्म से मेरी तबियत को हटा दिया किन्तु हिन्दू धर्म और हिन्दुओं से मुझ में प्रेम का बन्धन उत्पन्न कर दिया। यह प्रेम बन्धन केवल धार्मिक न था किन्तु राष्ट्रीय; और इसके पैदा करने में

लाला मुल्कराज भल्ला की दो छोटी किताबों 'शहीद गंज' और 'वीरगंज ने भी अपना प्रभाव किया।

बचपन में मुझे कुछ सुध बुध न थी मैं एक सिक्ख कुटुम्ब में पाला गया था और अपनी नानी जी को जपजी का पाठ करते हुए सुना था। किन्तु उसके बाद मुसलमान धर्म की शिक्षा के प्रभाव से मुझे न हिन्दु धर्म से प्रेम था और न सिक्ख धर्म से। मैं दोनों को कट्टर अन्ध विश्वासों और मूर्खतापूर्ण बातों का ढेर समझता था।

मेरे इन विचारों में जो परिवर्त्तन हुआ वह धार्मिक शिक्षा का परिणाम न था किन्तु मेरे राष्ट्रीय भावों का फल था। धार्मिक साहित्य मैंने जो कुछ पढ़ा था वह हिन्दू धर्म के विरोध में और मुसलमान धर्म के पक्ष में था। इस्लाम के साथ मुझे कुछ प्रेम था किन्तु जब मैंने " वाक़यात हिन्द " और "कसस हिन्दू" को पढ़ा तो मेरे हृदय में एक लहर पैदा हुई जो दिन प्रति दिन मुझे इस्लाम से परे ले जाने लगी। हिन्दू धर्म का अध्ययन करने और उसकी सुन्दरताओं पर सम्मति स्थिर करने का मुझे कोई अवसर न था। न मेरी योग्यता इतनी थी कि मैं धार्मिक प्रश्नों को अच्छी तरह से समझ सकता; और न मुझे इनके अध्ययन करने का अवकाश था। यदि मुझे अवकाश होता भी तो मैं क्या पढ़ता? संस्कृत मुझे आती न थी, हिंदी के अक्षर भी मैं

जानता न था। गुरुमुखी से मैं अब तक अनभिज्ञ हूं। मेरा सारा बचपन उर्दू फ़ारसी और अरबी पढ़ने में लगा था। उर्दू में कोई पुस्तक ऐसी न थी जिसमें हिन्दू धर्म की खूबियां बयान की गई हों और यदि थी भी तो वो मेरी जानकारी से परे। किन्तु तो भी मैंने अभी मिडिल स्कूल की परीक्षा भी पास नहीं की थी कि 'वाकयात हिन्द' और 'क़सस हिन्द' के पठन ने मेरी आत्मा में एक आन्दोलन हिन्दू धर्म और हिन्दू इतिहास की ओर पैदा कर दिया। मैं 'क़सस हिन्द' को पढ़ कर कई बार रो पड़ा और मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मेरे कानों को और मेरे हृदय को राजपूतों की बहादुरी की चर्चाएं भाती हैं और खींचती हैं। यह भाव दिन दिन बढ़ता गया। यहां तक कि एक समय ऐसा आया कि यह उस सीमा तक पहुंचा जहां कि रोका न जा सका।

---

(११)

हिन्दू जातीयता का पहला पाठ

१६ वर्ष की अवस्था हो जाने पर, मैं एन्ट्रैन्स की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर लाहौर आया और ब्रह्म समाज में जाने लगा तो हिंदु-धर्म की ओर मेरा विचार धीरे धीरे बढ़ने लगा और मुझे हिन्दुओं की प्रशंसा सुनने की इच्छा होने लगी। ब्रह्म समाज के साहित्य में यद्यपि हिन्दू धर्म की

बहुत बड़ाई न थी तथापि उसके वायु मंडल में हिन्दू जातीयता की कुछ गन्ध पाई जाती थी। अंगरेज़ों पर और अंगरेज़ी सभ्यता पर तो ब्रह्म समाजियों का प्रेम था ही, किन्तु इस्लाम की अपेक्षा वह प्राचीन हिन्दू धर्म का अधिक आदर करते थे। संस्कृत और हिन्दी के पोषक थे और हिन्दी और उर्दू के झगड़े में हिन्दी के पक्ष में थे। हिन्दी उर्दू के झगड़े ने मुझे हिन्दू जातीयता का पहला पाठ पढ़ाया और मेरी तबियत ने उस समय जो पलटा खाया उसमें फिर कमी नहीं हुई। प्रारम्भिक संस्कार और पिता की शिक्षा से तो मेरी सहानुभूति उर्दू के साथ होनी चाहिये थी। निजी लाभ भी मेरा इस में था क्योंकि मैं हिन्दी अक्षर तक न जानता था। फ़ारसी के पढ़ने में मैंने कई साल लगाये थे और उर्दू साहित्य की मुझे अच्छी जानकारी थी। हिन्दी की विजय में स्पष्ट ही मेरी निजी हानि थी। किन्तु ज्यों ही मुझे यह निश्चय हो गया कि कि राष्ट्रीयमेल और राजनीतिक एकता के लिये सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है; मैंने अपने लाभ और हानि के विचारों को एक ओर रख दिया और हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

हिन्दी उर्दू के झगड़े में जब मैं अम्बाले पहुँचा और मैंने हिन्दी के पक्ष में और उर्दू के विरुद्ध व्याख्यान दिया तो

उस समय मुझे हिन्दी के अक्षर भी न आते थे। परलोक-वासी राय हुकमचन्द इस सभा में उपस्थित थे। वह दिल्ली वाले थे। अँगरेज़ी के तो विद्वान् थे ही, किन्तु उर्दू के प्रेमी थे। उर्दू तो मानो उनके घर की लौंडी थी। उन्होंने एक अखबार में मेरे व्याख्यान की बहुत प्रशंसा की, किन्तु मेरे हिन्दी के ज्ञान पर बड़ी हंसी उड़ाई। मैंने दिल्ली से वापस आते ही हिन्दी के अक्षर सीखे और फ़ारसी और अरबी पढ़ना छोड़ दिया।

मैं इन दिनों कालेज में भी फ़ारसी और अरबी पढ़ा करता था। मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ाद हमारे उस्ताद थे। एक दिन दर्जे में वह हिन्दी के पक्षपातियों की खिल्ली उड़ाने लगे, और बङ्गालियों की हंसी करने लगे। उनके मुँह से यह निकल गया कि बङ्गाली दूसरे देश के रहने वाले हैं। वह व्यर्थ ही पञ्जाब के मामले में हस्ताक्षेप करते हैं, उनका पञ्जाब से क्या सम्बन्ध। परलोकवासी मौलवी साहब धर्म के शिया थे और सदा ईरान की प्रशंसा किया करते थे और कहा करते थे कि मेरा वतन तो ईरान है, मेरा जी चाहता है वहां जा रहूँ। जब उन्होंने बंगालियों पर हमला किया तब तुरन्त मेरे मुँह से निकला कि मौलवी साहब ! बंगाली यद्यपि पंजाब के रहने वाले नहीं, फिर भी हिन्दी तो हैं। किन्तु आप तो मुसलमान हैं और ईरानी होने का दावा करते हैं।

यदि बंगाली सज्जनों को पंजाब के मामलों में हस्ताक्षेप करने करने का अधिकार नहीं तो बतलाइये आप को यह अधिकार कहां से प्राप्त हुआ। मौलवी साहब कुछ क्रोधित हुए। किन्तु दर्जे की सहानुभूति मेरे साथ थी। (सिवाय दिल्ली वालों के) इस लिये कुछ कह न सके। मैं बीमारी के कारण और कानून पढ़ने के कारण भी आर्टस कौर्स(Arts Course) की परवाह न करता था और प्रायः फ़ारसी और अरबी के घण्टों से अनुपस्थित रहा करता था। मौलवी साहब मेरे विरुद्ध गिल्ला करने लगे। इस लिये अम्बाला से वापिस आने पर साइम साहब प्रिंसिपल ने मुझे बुलाया और धमकाया तो मैंने फ़ारसी और अरबी पढ़ना बन्द कर दिया।

गुरुदत्त मुझे संस्कृत प्रोफ़ेसर (पण्डित भगवानदास) के पास ले गया और उन से कहने लगा—"पंडित जी! आज एक नया शिष्य लाया हूँ। उन दिनों संस्कृत बहुत कम लड़के पढ़ते थे, यद्यपि उस वर्ष तो कई संस्कृत पढ़ने वाले थे। पंडित जी मुझ से पूछने लगे कि मैंने संस्कृत में कितनी शिक्षा पाई। जब मैं चुप रहा, तो गुरुदत्त हंस कर बोला—"पंडित जी यह तो नया शिष्य है। अब तक मुसलमान था अब हिन्दू हुआ है।" पंडित जी हंस पड़े और कुछ नहीं बोले। लाला हंसराज ने भी संस्कृत, कालेज में जाकर आरम्भ की थी और गुरुदत्त कहा करता था कि मैं भी एक

साल में एफ० ए० की परीक्षा के योग्य संस्कृत पढ़ सकूंगा। ख़ैर ! संस्कृत तो मैंने ख़ाक न पढ़ी किन्तु मेरे जीवन की यह पहली घटना थी जिसने मुझे पक्का हिन्दू बनाया और मुझे अन्त तक इस घटना की ओर खेद से दृष्टि डालने का कोई अवसर नहीं हुआ।

---

(१२)

राजनैतिक गुरु

इन्हीं दिनों बाबू सुरेन्द्रनाथ बनरजी के अंग्रेज़ी व्याख्यान मेरे हाथ में पड़ गए। मैंने उनको पढ़ा। उनमें से एक व्याख्यान जोज़फ़ मेज़िनी पर था। मैं इस को पढ़ता हुआ कई बार रोया। इसने मेरे कोमल हृदय पर अपनी छाप लगा दी और मैंने यह निश्चय कर लिया कि जीवन भर मैज़िनी की शिक्षा पर चलूंगा और जाति की सेवा करूंगा। मैज़िनी को मैंने अपने मन में गुरु बना लिया और और आज तक वह मेरा गुरु है। यह बात सन् १८८१ या १८८२ ई० की है। मैं इस समय तक आर्यसमाजी नहीं हुआ था और आर्यसमाज के साथ मुझे कोई विशेष प्रेम न था, किन्तु मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि उस के बाद से मेरी क़ानूनी तैयारी कम कम होने लगी और मेरा मन नियम पूर्वक पढ़ने पढ़ाने से हट गया, मेरी आत्मा उड़ना

चाहती थी, किन्तु ग़रीबी, माँ बाप की तंगी और सुविधाओं का अभाव मुझे निराश किए देते थे। प्रायः ऐसा हुआ कि भारतीय दण्ड विधान या और कोई क़ानूनी पुस्तक सामने पड़ी है और मैं पुराने आदमियों को सम्बोधन कर व्याख्यान तैयार करने लग गया। मैं इन दिनों दैनिक वृत्तान्त लिखा करता था और उस वृत्तान्त में अपने विचार लिख देता था। (खेद है कि वह दैनिक वृत्तान्त नष्ट हो गया) तात्पर्य यह कि इस प्रकार मेरे विचारों में एक महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया। आर्य्यसमाज में जिस समय मैं सम्मिलित हुआ हूँ उस समय मेरे बिचार बढ़े चढ़े हुए थे।

पण्डित अग्निहोत्री को जब यह मालूम हुआ कि मैं आर्य्यसमाज का सदस्य हो गया हूँ तो उनको बहुत आश्चर्य्य हुआ उन्होंने एक व्याख्यान में मेरी उस चिड़िया से उपमा दी जो बिना समझे बूझे एक वृक्ष से उड़ कर दूसरे वृक्ष पर जा बैठती है। यह बात सन् १८८२ ई० की है।

सन् १८८३ ० में जब मैं जगरांव में मुखत्यारी करता था तो मुझे अपने राजनीतिक विचारों को पुष्ट करने का कोई अवसर न मिला, किन्तु तो भी इस समय मैं "रफ़ीक़े हिन्द" नामी समाचार पत्र में लेख लिखा करता था। मौलवी मुहर्रम अली चिशती इस पत्र के सम्पादक थे। वह भी मेरे समान नवयुवक थे और बड़े प्रेम से मेरे लेखों को

समाचार पत्र में स्थान दिया करते थे। जब मैं लाहौर में पढ़ा करता था तो एक बार मैं एक गोरे का मुक़द्दमा देखने गया, इस ने किसी हिन्दुस्तानी को मार डाला था। ज्यूरी ने गोरे को छोड़ दिया, मुझे स्मरण है कि हिन्दुस्तानियों में इससे बहुत असन्तोष फैला। मैं भी इस असन्तोष में सम्मिलित था, किन्तु मेरी राष्ट्रीयता अभी बहुत गहरी न थी। मैं आर्यसमाज के व्याख्यानों में गवर्नमेंट की बहुत प्रशंसा किया करता था। उन दिनों यही चलन था और इसके अतिरिक्त मेरा यह विचार था कि अंग्रेज़ों ने हम को मुसलमानों के अत्याचार और दुर्व्यवहार से छुड़ाया है। अस्तु, सन् ८३, ८४, ८५ ई० में मेरे राजनैतिक विचारों को कोई विशेष पोषण नहीं मिला।

मैं अन्य लोगों को तरह अंग्रेज़ी उर्दू के समाचार पत्र पढ़ा करता था। लोगों से चर्चा करता था, किन्तु विशेष रूप से न मैंने कोई राजनीतिक अध्ययन किया और न किसी राजनीतिक आन्दोलन में कोई भाग लिया। अधिक ध्यान मेरा वकालत की परीक्षा पास करने की ओर था, क्योंकि मैं देखता था कि मेरे माता पिता को थोड़ी आय के कारण बहुत कष्ट होता था, तथापि मुझे कोई ऐसा समय स्मरण नहीं जब मेरा क़ानूनी अध्ययन राष्ट्रीय विचारों से अप्रभावित और पृथक् रहा हो।

अस्तु, अन्त में जब सन् १८८५ ई० में मैं पास होगया और सन् १८८६ ई० में वकालत करने लगा और रुपया मेरे हाथ में आया तो मैंने एक अच्छा पुस्तकालय बनाया। एक बार ज़िले के डिपटी कमिश्नर साहब दिवालीकी रोशनी देखते देखते मेरे मकान में भी आ घुसे और वह मेरा पुस्तकालय देख कर ईर्षा करने लगे। उनके साथ एक असिस्टेण्ट कमिश्नर था, उससे उन्होंने कहा कि इस व्यक्ति का पुस्तकालय हम से कहीं अच्छा है और हमको लज्जा दिलाता है। हिसार के निवास काल में मैंने हर प्रकार का साहित्य पढ़ा। अकस्मात् एक बार मुझे दो-चार दिन के लिए एक राय साहब के साथ एक ही स्थान पर और एक ही मकान में रहने का अवसर मिला। यह राय साहब पंजाब के चुने हुए आदमियों में गिने जाते थे। विद्यार्थी अवस्था में ही उन्हों ने ख्याति प्राप्त करली थी। वह अपनी जाति-भक्ति के लिए प्रसिद्ध थे, किन्तु सरकारी नौकरी के कारण कुछ न कर सकते थे। उन का शुभ नाम राय मूलराज साहब है। उनके पास एक इतिहास योरुप की गुप्त मण्डलियों का था। यह किताब दो जिल्दों में थी और वह इस को किसी पुस्तकालय से लाए थे। उन्होंने उस पुस्तक में से पढ़ कर मुझे सुनाया और मेरे मनमें उसे पढ़ने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। मैंने उसी स्थान पर उस पुस्तक के

कुछ पृष्ट पढ़े किन्तु उन्हों ने पुस्तक मुझे घर लेजाने को न दी। जब मैं अपने घर लौटा तो मैंने कई पुस्तक विक्रेताओं को इस पुस्तक के लिए और मैज़िनी के जीवन चरित्र के लिए भी लिखा किन्तु मुझे वह कहीं से न मिली। अन्त में मैंने एक पंजाबी नवयुवक को जो उन दिनों विलायत गया हुआ था, बिलायत को लिखा और उसने लन्दन से मुझे एक प्रति मेज़िनी के जीवन चरित्र की और एक प्रति गुप्त मण्डलियों के इतिहास की भेजी। यह मुझे अच्छी तरह याद है कि जिस दिन यह पुस्तकें मेरे पास पहुँची उस दिन मुझे बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। मैंने मेज़िनी का जीवन चरित्र आदि से अन्त तक पढ़ा। जो प्रभाव मेरे मन पर कई वर्ष पहले बाबू सुरेन्द्रनाथ के व्याख्यान से हुआ था उससे कई गुना अधिक गहरा प्रभाव मैज़िनी के जीवन चरित्र पढ़ने से हुआ। मेज़िनी की गहरी देश भक्ति, मैज़िनी के कष्ट, उसकी नैतिक उच्चता और उसकी विस्तृत मनुष्यमात्र से सहानुभूति ने मुझे रिझा लिया। मैंने उसकी पुस्तक Rights of men (मनुष्य के कर्तव्य) का उर्दू में अनुवाद करना आरंभ किया। जब अनुवाद समाप्त हो गया तो मैंने अपने एक मित्र लाला नत्थूराम आनन्द के पास, जो लाहौर में रहते थे और समाचार पत्रों में लिखा करते थे, भेज दिया। उन्होंने उसको दोहरा कर अपने नाम से छपवा दिया।

मैं हिसार में था जब मैंने काँग्रेस की चरचा समाचार पत्रों में पढ़ी। अतएव मद्रास में जो कांग्रेस बदरउद्दीन तैयब जी के सभापतित्व में हुई उसका असर मुझ पर बहुत हुआ। मैंने कांग्रेस का साहित्य मँगा कर पढ़ा। इन्हीं दिनों में मिस्टर ह्यूम की लिखी हुई दो छोटी छोटी पुस्तिकाएँ निकलीं, जिनमें से एक का नाम था Star in the East (पूरब का तारा) और दूसरे का नाम An,old man'shope (एक वृद्ध की आशा)। मैंने आज तक कांग्रेस के साहित्य में ऐसे दो लेख फिर नहीं पढ़े। इन दोनों पुस्तिकाओं में स्वतंत्रता की लहर प्रबल थी। मेरे हृदय पर उन्होंने बड़ा प्रभाव डाला और सन् ८८ ई में मैंने अलीमुहम्मद भीमजी को जो उन दिनों पंजाब में कांग्रेस पर व्याख्यान देते फिरते थे हिसार बुलाया और उनका व्याख्यान कराया। इस व्याख्यान में बहुत लोग सम्मिलित हुए। मुझे अभी हिसार आये तीन वर्ष भी न हुए थे और अभी मेरी वकालत का आरम्भ ही था। इससे पहिले भी अंग्रेज़ी अफ़सर मेरी स्वतंत्र चाल से प्रसन्न न थे, क्योंकि मैं वकालत में भी चापलूसी के वाक्य, जैसे हुजूर, गरीब परवर You Honour इत्यादि का प्रयोग न करता था और थोड़ी सी अनुचित कार्यवाही पर लड़ पड़ता था। अतएव मैं कई नवयुवक अंगरेज़ी जजों से लड़ चुका था। परन्तु अब तो उन की अप्रसन्नता बढ़ गई।

(१३)

कांग्रेस का आंदोलन

मैंने इसकी कुछ चिन्ता न की और इन्हीं दिनों सर अहमद खां के नाम खुली चिट्ठियां लिखनी आरम्भ कीं। सर सैयद अहमद खां के सब लेख और उनकी लिखी पुस्तकें उर्दू में थीं। वह इन दिनों कांग्रेस के विरोध में बहुत लगे हुए थे। लखनऊ और मेरठ में कांग्रेस के विरुद्ध व्याख्यान दे चुके थे। मैंने उनके पुराने लेखों से उद्धरण दे कर के यह दिखलाया कि उन के उस समय के विचार उन के पुराने विचारों के कैसे विरुद्ध हैं? इन चिट्ठियों पर मैंने अपना नाम नहीं लिखा परन्तु इन पर स्थान हिसार का पता लिखा था और हिसार में सिवाय मेरे और कोई ऐसा व्यक्ति न था जिस की ओर से ये चिट्ठियां लिखी हुई समझी जा सकतीं। इस लिये लोग समझ गये कि इन चिट्ठियों का लिखने वाला मैं ही हूं। मुझे नाम छिपाने का कोई कारण न था, किन्तु इस लिए कि मैं एक अप्रसिद्ध सा आदमी था अपने नाम से ऐसे बड़े आदमी के नाम चिट्ठियां लिखने से झिझकता था। यह चिट्ठियां कांग्रेस के अधिवेशन से कुछ दिन पहिले समाप्त हो गईं और सारे भारतवर्ष में उनकी चर्चा फैल गई। अतएव मैंने अपने लाहौरी मित्रों के संकेत से इन चिट्ठियों को पुस्तिका के रूप में छपवा दिया। यह मेरा पहला राजनीतिक

लेख था। इस से पहिले मैं प्रायः समाचार पत्रों में स्थानीय और प्रांतीय विषयों पर लिखता रहता था किन्तु कोई लेख मेरा ऐसा नहीं निकला था जो मेरी प्रसिद्धि का कारण होता इस लेख ने एक दम मुझे प्रसिद्ध कर दिया। इस समय मेरी अवस्था २५ वर्ष की भी न थी। अस्तु।

दिसम्बर सन् ८८ ई० में जब मैं कुछ मित्रों के साथ इलाहाबाद पहुंचा, ता स्वागतकारिणी समिति ने स्टेशन पर से ही मेरा आदर करना आरम्भ कर दिया। स्टेशन पर स्वागतकारिणी समिति के सब मुख्य सदस्य मिस्टर ह्यूम और पं० अयोध्यानाथ और पं० मदनमोहन मालवीय सहित उपस्थित थे। मालवीय जी यद्यपि अभी युवक ही थे किन्तु माननीय थे। यह लोग मेरा स्वागत करने नहीं आए थे, किन्तु जब मैं पहुंचा तो इन्होंने और स्वयं सेवकों ने कई बार मेरे नामोच्चारण के साथ हर्षध्वनि की। कांग्रेस के अधिवेशन में भी मेरा बहुत आदर हुआ और मैं दो बार व्याख्यान देने के लिए मञ्च पर गया। पंजाब के प्रतिनिधियों ने, जिन में पंजाब के माननीय वकील, जैसे राय मुरलीधर और हंसराज साहनी आदि सम्मिलित थे, यह निश्चय किया कि अगले वर्ष कांग्रेस पंजाब में की जाए। अतएव मुझे अधिकार दिया गया कि मैं पंजाब की ओर से कांग्रेस को निमंत्रण दूं। अस्तु! मैंने यह निमंत्रण दिया। किन्तु कांग्रेस

के नेताओं ने अगले वर्ष कांग्रेस को बम्बई ले जाने का निश्चय किया।

दिसम्बर सन् ८८ ई० में इलाहाबाद कांग्रेस में सम्मिलित होना मानो राजनीतिक जीवन में मेरा पहला पग धरना था। कांग्रेस के बाद मि. ह्यूम ने मुझे कई चिट्ठियां लिखीं और मेरी अनुमति से सर अहमद खां के नाम की खुली चिट्ठियों की अंगरेज़ी ठीक करके उन्होंने अपने व्यय से दूसरी बार छपवा दीं। कुछ दिनों तक उस छोटी सी पुस्तक की बड़ी मांग रही। सन् १८८६ ई० के दिसम्बर तक कांग्रेस के लिए मेरे मन में बड़ा उत्साह रहा किन्तु उसके बाद ठंडा होना आरम्भ हो गया। सन् १८८६ ई० की बंबई कांग्रेस में मि० ब्रैडला प्रधान थे। मुझे भी उन से मिलने का मान प्राप्त हुआ। सर विलियम वेडवर्न के भी दर्शन इसी समय प्राप्त हुए। किन्तु इस समय मेरे मन पर कुछ उलटा सा प्रभाव पड़ा। मुझे यह प्रतीत होने लगा कि कांग्रेस के नेताओं को जाति और देश की अपेक्षा व्यक्तिगत ख्याति प्रकाश का अधिक ध्यान है। किन्तु इस समय मेरा यह विचार बहुत हलका संदेह था। मैं इसको अच्छी प्रकार से व्यक्त नहीं कर सकता था। सन् ८६ ई० से सन् ६३ ई० तक फिर मैं किसी कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुआ।

* * *

सन् ८६ ई० के बाद कांग्रेस की ओर से मेरी उदासीनता या शिथिलता का कारण मेरे आर्य्य समाजी मित्रों की सम्मतियां थीं। सन् ८६ ई० के बाद कुछ समय के लिये मुझे एक प्रतिष्ठित मित्र की संगत से लाभ उठाने का अवसर मिला। वह कांग्रेस के घोर विरोधी थे। जिसके कारण यह थे—

(१) कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेज़ों ने डाली है और अंग्रेज़ पक्के देश हितैषी हैं इस लिए यह कभी संभव नहीं कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो। भारतवर्ष के शासन से अंग्रेज़ों को और उन के देश को बहुमूल्य लाभ प्राप्त हैं। यह हो नहीं सकता कि वह प्रसन्नता से इस देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता दे दें। उन्होंने इस डर से कि कहीं शिक्षित हिन्दुस्तानी कोई गहरा राजनीतिक आन्दोलन इंगलैण्ड के विरुद्ध न उठावें। हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय को यह काम सौंप दिया है कि वह साल भर में दो तीन दिन व्याख्यान देकर और समाचार पत्रों में अपनी प्रशंसा पढ़कर चित्त प्रसन्न करलें। उन दिनों यह सज्जन प्रत्येक अंग्रेज़ को भारतवर्ष का शत्रु समझते थे और इस लिए उनको इसमे कुछ संदेह नहीं था कि कुछ अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों को एक अहानिकर काम देने के लिए कांग्रेस बनाई है। वह कांग्रेस को न केवल व्यर्थ, किन्तु भारतवर्ष के लिए हानिकर समझते थे। उन की यह

सम्मति थी कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा से, स्वदेशी के प्रचार से और गुप्त रीति से हथियारों के प्रयोग से अपने आपको बलवान बनाना चाहिए और उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिएँ जब उनको अंग्रेज़ों को निकालने के लिए पर्याप्त शक्ति और जनसमूह प्राप्त हो जावे। वह कांग्रेस के स्थान पर गुप्त काम के पक्ष में थे।

(२) उक्त सज्जन को हिन्दू मुसलमानों के मेल में विश्वास न था। उनका विचार था कि हिन्दू मुसलमानों के मेल का उद्योग हिन्दुओं के लिए हानिकर है। हिन्दुओं में एक दिली, धार्मिक उत्साह और धार्मिक संगठन बिलकुल नहीं है। मुसलमानों में यह सब बातें हैं, इस लिए हिन्दू मुसलमानों के मेल में जीत सदा मुसलमानों की ही होगी। और क्योंकि अभी मुसलमानों की राजनीतिक शक्ति अफ़ग़ानिस्तान और टर्की आदि में उपस्थित हैं, इस लिए हिन्दू मुसलमानों के मेल के उद्योग का यह फल होगा कि मुसलमान राजनीतिक रीति से और भी अधिक बलवान हो जावेंगे। उनकी सम्मति में इस बात की आवश्यकता थी कि हिन्दुओं को पहले बलवान किया जावे, उनके भीतर जातीय उत्साह उत्पन्न किया जावे, उनको एकता के मार्ग बताये जावें। उनका विचार था कि कांग्रेस का आन्दोलन हिन्दुओं को हिन्दू सुधार और हिन्दू एकता के काम से हटा

कर एक मूर्खता के काम में डाल देगा और इस से हानि हिन्दुओं को होगी। उनका यह विचार था कि इस राजनीतिक आन्दोलन से अंग्रेज़ों के दिलों में हिन्दुओं की ओर दुर्भाव उत्पन्न हो जावेंगे और वह न केवल हिन्दुओं के मार्ग में रुकावट डालेंगे परन्तु उन को कई प्रकार की हानियां पहुंचायेंगे।

साधारण तौर पर लाहौर के आर्य्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। कुछ तो यह समझते थे कि आर्य्य समाजियों को अपना सारा समय आर्यसमाज को देना चाहिये और आर्यसमाज से बाहर कोई सार्वजनिक काम नहीं करना चाहिए। कुछ का यह भी विचार था कि राजनीति में आर्य्यसमाजियों के अधिक भाग लेने से सरकार आर्य्यसमाज से बिगड़ जायगी और आर्य्यसमाज के काम में बिघ्न डालेगी।

स्वर्गीय लाला साईंदास, स्वर्गीय लालचन्द भी यही विचार रखते थे। लाला साईंदास और लाला मूलराज तथा लाला लालचन्द तीनों का यह विचार था कि हिन्दुओं का यह पहला कर्तव्य है कि वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें। उनके भीतर स्वावलम्बन और अपने ऊपर विश्वास का भाव पैदा हो और वह दूसरों का मुँह देखना छोड़ दें। स्वर्गीय लाला साईंदास सन् १८८१ ई० में भी केवल स्वदेशी

कपड़ा पहिनते थे और स्वदेशी का प्रचार करते थे। लाला मूलराज भी विश्वास के स्वदेशी थे और साधारणतया स्वदेशी कपड़ा पहनते थे किन्तु केवल स्वदेशी ही न पहनते थे।

आर्य्यसमाज के प्रारम्भिक इतिहास में समाज के बारे में सरकार के बुरे विचार थे। सरलेपेल ग्रिफिन सर-राबर्ट इजर्टन की सम्मति आर्य्यसमाज के सम्बन्ध में अच्छी न थी। उनका यह विचार था कि यह आन्दोलन एक हिंसक आन्दोलन है और सरकार के लिए भयावह है। आर्य्यसमाज की उन्नति से वे भयभीत थे। इसके बाद एक समय आया कि आर्यसमाज ने हिन्दुओं में गोरक्षा का विचार दृढ़ करने का उद्योग किया। इस समय हाकिमों की ओर से आर्यसमाज लाहौर के नेताओं को फसाने का यत्न किया गया। लाला मूलराज, लाला साईंदास आदि कई बार बुलाये गये। एक बार कदाचित उनके मुचलके लिए गये या लेने का उद्योग किया गया। आर्यसमाज के मेम्बरों में बहुत से सरकारी नौकर थे। इस कारण भी वे राजनीतिक आन्दोलन में आर्यसमाजियों के भाग लेने के विरुद्ध थे।

लाला साईंदास और लाला मूलराज बहुधा इस बात पर शोक किया करते थे कि हिन्दुस्तानियों का मस्तिष्क एक बिजातीय शासन को दृढ़ करने में व्यय होता है। अत-

एव वे प्रथम श्रेणी के हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को सरकारी नौकरी में जाने से रोकते थे। लाला लालचन्द का विचार इस संबंध में भिन्न था। लाला साईंदास को इस बात का बड़ा दुःख था कि काशी के पण्डितों ने लार्ड रिपन की गाड़ी खींचने से हिंदू धर्म पर धब्बा लगाया। उनके लिए हिंदुओं के सार्वजनिक कार्य की नीति का आदर्श यह था कि वह अपने धर्म कर्म के काम में, अपने सामाजिक सुधार में, और अपने शिक्षासंबन्धी काम में सरकार के साथ या अंग्रेजी के साथ कुछ संबंध किसी प्रकार का न रक्खे। न उनसे आर्थिक सहायता लें न उनसे सम्मति लें और न और किसी प्रकार से उनसे सहायता ढूँढे। जो कुछ कर सकें स्वयं ही करें और अपनी जाति में अपने ऊपर विश्वास रखने के भाव उत्पन्न करें। कौन स्वीकार न करेगा कि यह राजनीतिक विचार बहुत अंश में ठीक और उच्च थे?

राजनीतिक आन्दोलन के आरम्भ में साईंदास का देहांत हो गया। किन्तु लाला मूलराज तथा लाला लालचन्द के विचारों में बाद में परिवर्त्तन हुआ उस की चर्चा आगे उचित स्थान पर की जायगी।

सन् १८६३ में जब बख़शी जयसीराम के प्रस्ताव से पंजाब में कांग्रेस को निमन्त्रण दिया तब आर्यसमाजियों में पहले बहुत आगा पीछा रहा। सिवाय बख़शी जयसीराम

के आर्य्यसमाजी नेताओं ने कांग्रेस की तैय्यारी में भाग नहीं लिया। इसका एक कारण यह भी था कि आर्य्यसमाजी अपने घरेलू झगड़े में लगे हुए थे। महात्मादल के कुछ दुष्ट सदस्यों ने सरकार को इस प्रकार के पत्र भी भेजे थे कि कालेज दल के सब नेता हृदय से सरकार का अशुभ चाहने वाले हैं और आर्य्यसमाज से राजनीतिक काम लेना चाहते हैं। मैं कांग्रेस की स्वागत कारिणी समिति का सदस्य अवश्य बना परन्तु मैंने उतना भाग नहीं लिया जितने की लोग मुझसे आशा रखते थे। वह कांग्रेस अधिकतर बख़शी जयसीराम और जोगेन्द्रचन्द्र बोस के उद्योग का फल था। लाला हरकिशनलाल भी इस कांग्रेस के प्रेरक आत्माओं में थे किन्तु बख़शी जयसीराम और लाला हरकिशनलाल की बनती न थी, और कई बार स्वागतकारिणी समिति के अधिवेशनों में वह बिगड़ जाते थे। स्वर्गीय सरदार दयालसिंह पर लाला हरकिशनलाल का अधिक प्रभाव था। अस्तु। यह केवल एक भिन्न प्रसङ्ग है।

सन् १८९३ की कांग्रेस में मैंने दो तीन व्याख्यान दिए किन्तु सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि इस कांग्रेस में राय मूलराज ने बहुत भाग लिया। सरकारी नौकरी के कारण वह सदस्य तो न थे किन्तु वह अनियमित रीति से कांग्रेस की विषय निर्वाचिनी समिति आदि के

अधिवेशनों में उपस्थित रहते थे और लोगों को कांग्रेस की एक स्थायी नियमावली बनाने की सम्मति देते थे।

सन् १८६३ ई० से १६०० ई० तक फिर मैं किसी कांग्रेस में सम्मिलित नहीं हुआ, किन्तु राजनीतिक रुचि नष्ट नहीं हुई। सन् १६००ई० में फिर कांग्रेस पंजाब में हुई। इस बार आर्य्यसमाजियों ने कांग्रेस के काम में पहिले की अपेक्षा अधिक रुचि दिखलाई, जिसका कारण यह था कि इस अन्तर में स्वर्गीय वख़शी जयसीराम का प्रभाव आर्य्य-समाज में बढ़ गया था और आर्य्यसमाज के बहुत से नेता इनके मित्र थे। अतएव आर्य्यसमाजी प्रभाव से यह निश्चय हुआ कि मंडप बनाने में रुपया व्यय न करके लाहौर में एक पक्का बड़ा कमरा बनाया जाय, जिस में कांग्रेस की जाय और जो बाद में सार्वजनिक सभाएं करने के काम आवे। अस्तु। स्वर्गीय लाला लालचन्द और उनके मित्रों ने ब्रैडला हॉल के लिए चंदा जमा करने में बहुत काम किया। आर्य-समाजी इस नाम के विरोधी थे, किन्तु बहुसम्मति से निश्चय इसी नाम के पक्ष में हुआ। कांग्रेस के कुछ दिन पहिले ही वख़शी जयसीराम का देहान्त हो गया। आर्य-समाजियों की रुचि कांग्रेस में कम हो गई। कांग्रेस के अधिवेशन के बाद, कई वर्ष तक आर्य समाजी नेताओं और लाला हरकिशनलाल में कांग्रेस मन्दिर और कांग्रेस के व्यय

के सबन्ध में बहुत अनबन रही, जिसका कभी नियमित रीति से और नियमानुसार निर्णय नहीं हुआ। स्वर्गीय बाबू काली प्रसन्नराय जी कांग्रेस समिति के प्रधान थे, और आर्य समाजियों के संकुचित हृदय और उनकी धार्मिक दलबन्दी से बहुत अप्रसन्न थे, परन्तु इस झगड़े में आर्यसमाजियों के साथ थे। वह यह समझते थे कि कांग्रेस के हिसाब किताब में बहुत गड़बड़ है। उन झगड़ों का निर्णय न होने पाया था कि बाबू साहिब कलकत्ता चले गए और उनके बाद आर्यसमाजियों ने कांग्रेस की राजनीति में भाग लेना छोड़ दिया।

सन् ९८ से लेकर १९०४ ई० तक का सार्वजनिक जीवन।

सन् १८९७ और ९८ मेरे लिये बहुत कष्ट के वर्ष थे। मैं पहिले लिख चुका हूं कि ९७ ई के अगस्त से लेकर मार्च १८९८ तक मैं ऐसा बीमार रहा कि मेरे बहुत से मित्रों को मेरे जीवन की आशा न रही। आठ मास तक बराबर ज्वर आता रहा और जिगर में दोष रहा। मेरा ज्वर अभी जाने भी न पाया था कि मेरे छोटे भाई लाला दलपतराय एम० ए० क्षय रोग से घिर गए। जब मेरा ज्वर गया तो उनका रोग बहुत बढ़ा हुआ था। जून मास के अन्त में उनका देहान्त हो गया, वह एक विधवा और दो बच्चे छोड़ गए। मुझे उनकी मृत्यु से बहुत दुःख हुआ क्योंकि मुझे उनके साथ

बड़ा प्रेम था और उनसे बड़ी आशाएं थीं। वह पक्के आर्य-समाजी थे और उनको संस्कृत से बड़ा प्रेम था। मुझे आशा थी कि सार्वजनिक सेवा में वह मेरे से बढ़ जाँयगे। किन्तु खेद कि रोग ने उनको अवसर न दिया। उनके मरने के बाद दो मास तक मैं रात दिन स्वामी दयानन्द जी के जीवन चरित को ठीक करने में लगा रहा और जब उससे छुट्टी पाई तो फिर अकाल के काम में लग गया।

सन् १८६६ ई० में भी बहुत दुर्भिक्ष रहा, बल्कि ६६ ई० और १६०० ई० का दुर्भिक्ष ६७ और ६८ के दुर्भिक्ष से भी बढ़ा चढ़ा हुआ था। संयुक्तप्रांत और पंजाब भी बड़ी कठिनाई में पड़े थे और इस लिए आवश्यकता थी कि अनाथ रक्षा के काम को कुछ अधिक विस्तार से किया जावे। अस्तु, दुर्भिक्ष की समाप्ति पर लग भग २००० (दो सहस्र) अनाथ हमने बचाए।

इस समय यद्यपि मैं वकालत का काम करता था, तथापि इस काम में मेरा जी न लगता था। वकालत मेरे सार्वजनिक काम में विघ्न डालती थी और सार्वजनिक काम वकालत में विघ्न डालते थे। मेरा मन एक ओर होने को चाहता था। वकालत की ओर मेरी रुचि न थी। मैं चाहता था कि वकालत छोड़ कर पूरी शक्ति से देश की सेवा करूं और एक ओर हो जाऊँ। परन्तु मेरे पिता इसमें बाधक

होते थे। वह चाहते कि मैं धन इकट्ठा करके अपने भाइयों और संतान के लिए यथोचित प्रबन्ध करूँ। मैं उत्तर देता था कि भाइयों की शिक्षा से मैं निवृत्त हो चुका हूँ और वह अपनी जीविका उपार्जन के योग्य हो गये हैं, मेरी संतान की दाल-रोटी के लिए मेरे पास धन है जो उनको पर्याप्त होना चाहिए। मेरी माता मेरे शुभ संकल्प में बाधक होना नहीं चाहती थीं। उनकी सहानुभूति मेरे साथ थी। अन्त में मैंने सन् १८९८ ई० के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर यह प्रकाशित कर दिया कि मैं आगे से वकालत के काम को घटा कर शेष सब समय समाज और कालेज तथा देश की सेवा में व्यय करूंगा। अतएव मैंने इस संकल्प की पूर्ति में स्कूल के घेरे में प्रबन्धक समिति के कार्यालय के पास अपने लिए एक कमरा विशेष रूप से ठीक कर लिया और मैं वहां बैठकर कालेज और समाज का काम करने लगा। लगभग दो मास तक मैं कालेज की श्रेणियों को भारतवर्ष के इतिहास पर व्याख्यान देता रहा। इस समय में मैंने स्कूल के लिए अंग्रेज़ी की पाठ्य-पुस्तक भी बनाई। इसके अतिरिक्त मैं बाहर की समाजों के अधिवेशनों में अधिकता से जाने लगा। दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में मैंने राजपूताने में संयुक्तप्रांत आदि में दौरा किया। ईसाइयों के भिन्न भिन्न अनाथालय देखे, चन्दा भी जमा किया, एक बार दुर्भिक्ष के कमीशन के

सामने गवाही भी दी। इस काल अर्थात् १८६५ से लेकर १६०० तक मैंने पांच चार पुस्तकें तैयार कीं अर्थात् मैजिनी गैरीवाल्डी, शिवाजी, स्वामी दयानन्द और कृष्ण, और एक छोटी सी पुस्तक प्राचीन आर्य्य सभ्यता पर बालकों के लिए बनाई। और कुछ छोटी छोटी पुस्तकें सामाजिक तथा अन्य विषयों पर लिखीं इसके अतिरिक्त अंग्रेजी के मासिक पत्रों में भी लेख लिखता रहा। लगभग दो वर्ष तक मैं लाला हंसराज के साथ आर्य्यगजट पत्र का सम्पादन करता रहा, जिसका भार अधिक तर मेरे ऊपर था। इस काल में मैंने भगवद्गीता और मनुस्मृति तथा उपनिषद् आदि पुस्तकों को पढ़ा और अपने आपको सामाजिक जीवन के योग्य बनाया।

अस्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मैंने वकालत त्यागने के मार्ग में दूसरा पग बढ़ाया और प्रण किया कि आगे से वकालत में जो आय होगी वह जाति सेवा के काम में व्यय की जावेगी। इसके सम्बन्ध में जो चिट्ठी मैंने लाला हंसराज को लिखी थी उसमें उस आय को सर्व साधारण के लिए अर्पण किया था, विशेष कर समाज और कालेज के लिए अर्पण नहीं किया था। यद्यपि जनता का यह विचार था कि कालेज और समाज को ही उसका अधिक भाग मिलेगा और मुझे भी यही आशा थी। यह कार्यवाही इस

लिए की गई थी कि वकालत से रुपया पैदा करने का लोभ जाता रहे। विचार था कि जब इस में कोई व्यक्तिगत लोभ न होगा तो वकालत का काम स्वयं ही छूट जायगा। अस्तु सन् १९०४ ई० तक जो आय मुझे वकालत से होती रही उसको मैं समाज और कालिज के लाभ के लिए व्यय करता रहा और जो बचता था उसको वार्षिक अधिवेशन पर दे देता था। इस बीच में मैंने कई बार सुना कि सरकार मेरी पुस्तक मेजिनी के सम्बन्ध में अनुसंधान कर रही है और मुझ पर मुकद्दमा चलाने की चिन्ता में है। अस्तु इतना तो मुझे मालूम था कि पंजाब के डाइरेक्टर साहब ने दयानन्द कालेज के प्रिंसिपल (मुख्याध्यापक) से एक से अधिक बार पूछा कि मेरी पुस्तकें दयानन्द कालेज और स्कूल की पढ़ाई में तो सम्मिलित नहीं, और ऐसा ही एक आज्ञापत्र पंजाब के स्कूलों के मुख्याध्यापकों के नाम भेजा गया। पंजाब के एक बड़े नगर में इंस्पेक्टर ने छात्रालय में रहने वाले एक विद्यार्थी के सन्दूक की तलाशी ली और उस में से एक प्रति मेज़िनी की निकल आने पर मुख्याध्यापक से पूंछ ताछ की गई। इसके अतिरिक्त मेज़िनी का अनुवाद दो तीन बार अंग्रेज़ी में कराए गये और सरकारी वकीलों से सम्मति आदि प्राप्त की गई। सुना है कि सरकार के कानूनी अफ़सरों की सम्मतियों में भेद होने के कारण मेरे ऊपर मुकद्दमा नहीं

चलाया गया। इस सन्देह से मैं अभी मुक्त न होने पाया था कि पंजाबी समाचार पत्र लाहौर से निकलने लगा। पंजाबी समाचार पत्र का इतिहास मेरे जीवन का एक रोचक अध्याय है, इस लिये मैं अलग अध्याय में उसका वर्णन करूंगा।

मैं पहिले लिख चुका हूं कि १६०० ई० की कांग्रेस के बाद पंजाब में राजनीतिक जीवन बिलकुल न रह गया। पंजाब में इसके पहिले भी राजनीतिक जीवन नाम मात्र ही का था। पंजाब के शिक्षित समुदाय का बहुत बड़ा भाग आर्यसमाज में सम्मिलित था और आर्यसमाजियों के राजनीतिक विचार मैं पहिले लिख चुका हूं। तथापि जब तक बाबू जोगेन्द्र चन्द्र बोस लाहौर में रहे और इनके बाद बख्शी जयसी राम की मृत्यु तक इंडियन एसोसियेशन और पंजाब कांग्रेस कमेटी कुछ न कुछ राजनीतिक काम करती रही। यह काम कुछ अधिक महत्व का न था, किन्तु इतना अवश्य था कि जो काम दूसरे प्रांतों में आरम्भ होता था उस के सम्बन्ध में पंजाब में भी कुछ न कुछ कार्रवाई हो ही जाती थी। इंडियन ऐसोसिएशन हर एक नये लफटएट गवर्नर के आने पर उन्हें मान पत्र दे दिया करती थी किन्तु बख़शी जैसीराम की मृत्यु के बाद इंडियन एसोसियेशन और पंजाब कांग्रेस कमेटी दोनों सो गईं। आर्य्यसमाजी कुछ तो विचारों

के विरोध के कारण अलग होगये और कुछ इस कारण से अलग होगये कि लाला हरकिशनलाल से उनकी बनती न थी। बिशेषता यह थी कि लाला हरकिशनलाल के राजनीतिक विचार भी बहुतकुछ आर्यसमाजियों से मिलते थे। परन्तु वह फिरभी ऊपरी रीतिसे कांग्रेस में सम्मिलित थे। इस स्थान पर यह आवश्यक है कि थोड़ी-सी चर्चा लाला हरकिशनलाल की की जाय।

लाला हरकिशनलाल

मैं जब सन् १८९२ ई० में लाहौर आया तो लाला हरकिशनलाल अभी हालही में विलायत से आये थे। मेरा और उनका सम्बन्ध कुछ गहरा हो गया। राय मूलराज का बहुत दिनों से यह विचार था कि देसियों का एक जातीय बंक होना चाहिए। उनको इस बात की बड़ी चिन्ता रहती थी कि अंग्रेज़ हिन्दोस्तानियों के रुपये से बैंक और अन्य कम्पनियां चला रहे हैं और हमको केवल थोड़ा व्याज देकर शेष सारा लाभ उठाते हैं। मैंने भी अपनी 'मैज़िनी' नाम की पुस्तक की भूमिका में यह विचार प्रकट किया था कि राजनीतिक स्वतन्त्रता से पहिले देश में धार्मिक स्वतन्त्रता, शिक्षा सम्बन्धी स्वतन्त्रता और व्यापारिक स्वतन्त्रता होनी

चाहिए। आर्यसमाज ने धार्मिक स्वतन्त्रता और सामाजिक स्वतन्त्रता के काम को अपने हाथ में ले लिया था। राय मूलराज और उनके समान विचार रखने वाले लोग यह चाहते थे कि व्यापारिक स्वतन्त्रता की नींव भी आर्यसमाजी हाथों से पड़े। इनको मेरे पुरुषार्थ और साहस पर भरोसा था इस लिये वे मुझ से कई बार कहते थे कि यदि मैं इस काम को हाथ में लूं तो सफलता हो सकती है। अतएव मैंने लाहौर आते ही इनकी प्रेरणा से एक चिट्ठी इस विषय पर निकाली कि पञ्जाब में स्वदेशी बैंक बनाया जाय या नहीं। यह चिट्ठी कुछ चुने हुए मित्रों को भेजी गई और उनके उत्तर भी आशाजनक आये। परन्तु मेरे हाथ पहले से भरे हुए थे और मैं समाज और कालेज की ओर से ध्यान हटा कर बैंक की ओर नहीं लगाना चाहता था। इस लिये मैंने और कोई कार्रवाई इस सम्बन्ध में नहीं की। इस बीच लाला हरकिशन-लाल की मानसिक स्फूर्ति की प्रसिद्धि होने लगी। लाला हरकिशनलाल यद्यपि आर्यसमाज के धार्मिक और सामा-जिक विचारों की हँसी किया करते थे और उसके बहुत से सदस्यों को धूर्त (Humbug) कहा करते थे। तथापि उन को यह विश्वास था कि पंजाब में कोई आन्दोलन आर्य-समाजियों की सहायता के बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

लाला हरकिशनलाल विलायत से व्यापार और नीति के सम्बन्ध में कुछ विचार लेकर आये थे जिनको वह कार्य रूप में परिणत करना चाहते थे। अतएव उन्होंने इन विचारों की चर्चा आरम्भ की और इन विचारों को कार्य रूप में लाने के लिये एक ओर तो उन्होंने ट्रिब्यून के सम्पादक मिस्टर गुप्त से और सरदार दयालसिंह से और दूसरी ओर आर्यसमाजियों से गाँठी। उन दिनों में लाला हरकिशन-लाल से मेरी भी गहरी जान पहचान थी और मैं और वह बहुधा मिला करते थे। लाला हरकिशनलाल मुझे उन लोगों के विवरण सुनाया करते थे जो बैंकों और कम्पनियों के द्वारा मालामाल हो गये थे। अंतमें लाला हरकिशनलाल और लाला मूलराज के उद्योग से पंजाब नैशनल बैंक स्थापित कर दिया गया और इन दोनों सज्जनों ने मेरे भाई दलपतराय को मैनेजर नियत किया। पञ्जाब नैशनल बैंक के पहिले डाइरेक्टरों में स्वर्गीय सरदार दयालसिंह, बाबू कालीप्रसन्नराय साहब, लाला लालचन्द, लाला हरकिशन-लाल आदि थे। सरदार दयालसिंह साहब तो कभी अपने घर से हिलते न थे। उनका आर्यसमाजियों पर विश्वास न था। लाला हरकिशनलाल साहब बहुधा इन के यहाँ आया करते थे और इनको हरकिशनलाल पर भरोसा था। कुछ समय तक तो शेष डाइरेक्टर इनके घर पर जाते रहे,

परन्तु नियमों के अनुसार डाइरेक्टरों की सभा का बैंक में होना आवश्यक था, इसलिये अन्तमें सरदार साहब के घर पर सभा होनी बंद होगयी। इसी बीच में डाइरेक्टरों को लाला हरकिशनलाल और इनसे सहमत रहने वाले डाइरेक्टरों की कार्रवाई पर अविश्वास होने लगा और डाइरेक्टरों में मतभेद पैदा होना आरम्भ हुआ। मेरे भाई ने भी बैंकसे सम्बन्ध त्याग दिया। इन मत भेदों का यह परिणाम हुआ कि लाला हरकिशनलाल ने एक नये बैंक की नींव डाली और पंजाब नैशनल बैंक के डाइरेक्टरों ने उनको बैंक से निकालने का विचार किया। सरदार दयालसिंह का भी इस समय देहाँत हो चुका था। बाबू कालीप्रसन्नराय कलकत्ता चले गये थे और इनके स्थान पर भक्त ईश्वरदास और लाला जयसीराम डाइरेक्टर बन गये थे। अस्तु। जब लाला हरकिशनलाल की वारी नये चुनाव की आई तो आर्यसमाजी दल ने इनके विरुद्ध मुझे खड़ा कर दिया। बहुत कठिनाइयों और झगड़े तथा बहस के बाद लाला हरकिशनलाल के स्थान पर मैं डाइरेक्टर हो गया। परन्तु लाला हरकिशनलाल के साथ स्थाई अनबन की नींव पड़ गई। बख़्शी जायसीराम के मरने के बाद जब कांग्रेस के हिसाब किताब का झगड़ा हुआ तो यह अनबन और भी अधिक बढ़ गई। बहुत लोग समझते रहे कि आर्यसमाजी दल हरकिशनलाल से व्यक्ति-

गत द्वेष के कारण झगड़ा करता है, क्योंकि इस समय लाला हरकिशनलाल और लाला मूलराज में भारत इंश्यूरस (बीमा) कम्पनी के सम्बन्ध में भी घोर विरोध हो चुका था।

तात्पर्य यह कि १९०० ई० की कांग्रेस से पहिले पंजाब के सार्वजनिक जीवन में दो दल बन चुके थे। एक दल आर्यसमाजियों का था और दूसरा लाला हरकिशनलाल का। लाला हरकिशनलाल ने अपने पास एक समुदाय ऐसा उत्पन्न कर लिया था जो इनको अपना नेता मानता था। इन में से बहुत से तो ऐसे थे जो हरकिशनलाल के आश्रित थे परन्तु कुछ स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति भी इस कारण से इनके साथ मिले थे कि आर्यसमाजियों को संकुचित विचार वाले समझते थे और उनकी यह धारणा थी कि आर्यसमाजी पंजाब में सारे सार्वजनिक जीवन को अपने हाथ में रखना चाहते हैं। १९०० ई० की कांग्रेस के हिसाब किताब का भी झगड़ा कभी नियमानुकूल रीति से निपट न पाता था और जब कांग्रेस समिति का अधिवेशन होता था तो यह झगड़ा खड़ा हो जाता था। इसलिए लाला हरकिशनलाल ने कांग्रेस समिति का अधिवेशन करना ही छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त लाला हरकिशनलाल स्वयं भी कांग्रेस के नेताओं से लड़ पड़े और उन्होंने कांग्रेस से सम्बन्ध तोड़ दिया। इंडियन ऐसो-

सियेशन पहिले से ही सोई हुई थी। तात्पर्य यह कि इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब में से राजनीतिक जीवन बिलकुल ही उड़ गया।

अस्तु। लार्ड कर्जन के शासन में जो राजनीतिक विवाद दूसरे प्रांतों में हुए उनमें पंजाब ने अच्छा भाग नहीं लिया जिसका एक स्पष्ट फल तो यह हुआ कि पंजाब के शिक्षा विभाग में और दूसरे विभागों में जो अन्याय होते थे उनके कोई समाचार न निकलते थे।

---

(१४)

पंजाबी समाचार पत्र का जन्म

इस समय पंजाब में एक ही अंग्रेजी का समाचार-पत्र 'ट्रिब्यून' था। सरदार दयालसिंह जी के जीवन में तो यह पत्र अच्छा स्वतन्त्र था यद्यपि सरदार साहिब के अन्तिम जीवन में ही इसकी स्वतन्त्रता और सत्यनिष्ठा में अन्तर पड़ चुका था। परन्तु उन के मरने के बाद तो पत्र बिलकुल ही मन्द पड़ गया। सरदार दयालसिंह अपनी वसीयत में लाला हरकिशनलाल को पत्र का ट्रस्टी बना गए थे, अतएव सन् १९०० ई० की कांग्रेस के समय पर पत्र लाला हरकिशन-लाल के हाथ में था। सरदार साहब के जीवन में आर्य-समाजियों को कभी पत्र से शिकायत नहीं हुई थी, क्योंकि

पत्र पंजाब के विषयों में स्वतन्त्र नीति का व्यवहार करता था, यहां तक कि सरकारी समुदाय में यह आर्यसमाजियों का पत्र समझा जाता था। पंजाब में जीवित संस्था केवल आर्यसमाज ही थी। और प्रायः बड़े बड़े वकील आर्य्यसमाज में ही सम्मिलित थे इसलिए गवर्नमेंट यह समझती थी कि ट्रिब्यून में जो गवर्नमेंट का विरोध या उसकी समालोचना होती है उसके कर्ता आर्यसमाजी ही हैं; किन्तु जब पत्र हरकिशनलाल के हाथ में आया तो उस की नीति में परिवर्तन होगया और आर्यसमाजियों में उससे अप्रसन्नता उत्पन्न हुई। यह अप्रसन्नता १९०० ई० में ही बड़ा आकार धारण कर चुकी थी क्योंकि बख़शी जयसीराम के जीवन में ही कई बार यह सलाह हुई थी कि पंजाब में एक दूसरा अंग्रेजी पत्र निकाला जाय। अन्त में सन् १९०० ई० की कांग्रेस के वाद अप्रसन्नता बहुत बढ़ने लगी सन् १९०३, १९०४ ई० में कई बार आर्य्यसमाजी नेताओं की सभाएँ हुईं। लोग यह अनुभव करने लगे कि पंजाब में राजनीतिक जीवन विलकुल नष्ट होजाना पंजाब के लिये बहुत हानिकर है और इसका प्रभाव पंजाब की उन्नति पर हो रहा है, सरकारी अफ़सरों पर सार्वजनिक मत का बिलकुल दबाब नहीं है। अतएव यह निश्चय हुआ कि पंजाब में राजनीतिक जीवन फिर से जगाया जाय। प्रश्न यह था कि यह किस प्रकार

किया जाय। कांग्रेस समिति पर लाला हरकिशनलाल का अधिकार था। इण्डियन एसोशियेशन मृतप्राय था। इसके कभी अधिवेशन न होते थे। समाचार पत्र ट्रिब्यून बहुत गिरी दशा में था। अन्त में यह निश्चय हुआ कि एक अंग्रेजी समाचार पत्र निकाला जाय।

अतएव इस अभिप्राय से आर्यसमाज के नेताओं की समिति ने एक नवयुवक को इस बात पर तैयार किया कि वह कालेज की अध्यापकी छोड़ कर राजनैतिक समाचार पत्र निकाले। उन्हीं दिनों में गवर्नमेंट कालेज में स्वदेशी के सम्बन्ध में विद्यार्थियों और मुख्याध्यापक में कुछ झगड़ा हो गया और हमको यह समाचार मिला कि जिन विद्यार्थियों ने ट्रिब्यून को सूचना दी थी उनके असल पत्र कालेज के एक अध्यापक को दिखा दिये गये जिसने मुख्याध्यापक को वह नाम बता दिये। तात्पर्य यह कि इन सब बातों को सोच समझ कर आर्यसमाज के दस नेताओं ने एक एक सहस्र की हानि का दायित्व लिया और लाला जसवन्तराय को इस बात पर तैयार किया गया कि वह पत्र निकालें। अक्टूबर १६०४ के पहिले सप्ताह में पंजाबी का पहिला अङ्क प्रकाशित किया गया और उस पहिले अङ्क से ही इसकी प्रसिद्धि स्थिर हो गई। पहिले ही अङ्क में कई अफ़सरों की कार्रवाई पर कड़ी भाषा में समालोचना की गई, जिसमें एक

हिंदू डिपटीकमिश्नर भी सम्मिलित था अर्थात् पत्र में उसके विरुद्ध भी लिखा गया, जिससे लोगोंको यह विश्वास हो गया कि पत्र किसी की रियायत न करेगा। इस पहिले अंक की कई टिप्पणियाँ और कदाचित् एक या दो लेख मेरे लिखे हुए थे। सम्पादक को भी मैंने ही नियत किया था। यह श्री बाल गंगाधर तिलक की सम्मति से रक्खे गये थे। पत्र के प्रबन्ध का काम स्वयं लाला जसवन्त राय ने अपने हाथ में लिया। लोगों को खुली रीति से मालूम था कि पत्र मेरा है और मेरी देखरेख में चलता है। लाला हरकिशनलाल के दल ने पत्र का विरोध किया किन्तु पत्र की नीति और उसके स्वतन्त्र लेखों ने शीघ्र जनता पर अपना सिक्का जमा दिया।

पंजाबी पत्र के घाटे के लिए जिन लोगों ने एक एक सहस्र का दायित्व लिया उन में से कुछ चुने हुए नाम नीचे लिखे जाते हैं—

राय बहादुर लाला लालचंद एम. ए., लाला ईश्वरदास एम. ए., स्वर्गीय लाला हंसराज साहनी वकील रावलपिंडी, स्वर्गीय ला० गुरदासराय साहनी बैरिस्टर रावलपिंडी, सेठ चूहड़लाल साहब ऐबटाबाद, लाला काशीराम वकील फ़ीरोजपुर, बख्शी टेकचन्द एम. ए. और लाजपतराय।

इन में से केवल लाला गुरदासराम और सेठ चूहड़लाल ने रुपये दिये, पहिले ने एक सहस्र और दूसरे ने पांच सौ,

जो एक वर्ष के भीतर ही लौटा दिए गये। शेष कभी किसी से एक पैसा तक लेने की आवश्यकता न पड़ी।

———

(१५)

दक्षिण भारतकी यात्रा

पत्र निकालने के साथ यह भी निश्चय किया गया कि १९०४ की बम्बई कांग्रेस में पंजाब के प्रतिनिधि जाँय और जहाँ तक हो सके फिर कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ें।

सन् १९०४ ई० की कांग्रेस में मैं सम्मिलित हुआ। इस कांग्रेस के सभापति सरहेनरी काटन थे और इनके साथ सर विलयम वेडर्वर्न भी आये हुए थे। विषय निर्वाचिनी समिति में पंजाब की शिकायतों पर वादविवाद हुआ। सर विलयम वेडर्बर्न से मेरा साक्षात् हुआ जिसका यह परिणाम हुआ कि हमने पुनः कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ने का पक्का निश्चय कर लिया। इस कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि १९०५ ई० में एक डेपूटेशन विलायत को भेजा जाय। बम्बई की कांग्रेस के बाद मैं कलकत्ते में मिस्टर गोखले से मिला और उनके प्रस्ताव पर मैंने भी इस डेपूटेशन में जाने का संकल्प कर लिया। इस भांति फरवरी सन् १९०५ में मेरा पहला साक्षात् मिस्टर गोखले से हुआ।

सीलोन और मद्रास

बम्बई कांग्रेस से निबट कर जनवरी में मैं जहाज द्वारा सीलोन पहुँचा। मेरे साथ संयुक्त प्रान्त के एक प्रसिद्ध आर्य-समाजी डिप्टी कलक्टर लाला गंगाप्रसाद एम. ए. भी थे। हम दोनों एक ब्रिटिश इंडिया स्टीमर में जो किनारे किनारे से सीलोन को जा रहा था सवार हुए। हमको जो जहाज़ मिला वह बहुत पुराना था और जो कोठरी हमको मिली वह तो बहुत ही बुरी थी। गर्मी बहुत अधिक थी दूसरे दर्जे की छत बहुत छोटी थी और इस पर कोई कुरसी या बेंच आदि नहीं थी। भोजन तो बहुत ही खराब था। केवल हम दोही यात्री सारे जहाज पर थे। ऐसा मालूम होता था कि इन जहाजों में कोई यात्री न जाता था। मेरे साथी कट्टर वैष्णव थे अर्थात् मांस अंडा, मछली न खाते थे। अंत में मैंने उनको अंडा खाने पर राज़ी किया। जहाज़ का बटलर ख़ानसामा एक बंगाली मुसलमान था और जहाज़ का कप्तान एक अंग्रेज़ था जो हमको बहुत घृणा की दृष्टि से देखता था और पहिले दर्जे की छत आदि पर कभी जाने न देता था। रास्ते में हमने मंगलोर कालीकट कनानोर और मही की सैर की। मही में हम लोग एक ईसाई गिरजा में जा ठहरे और संध्या को उस गिर्जा के हिन्दुस्तानी पादरी का भोजन खाया। मालाबार का किनारा बहुत हराभरा

और सुन्दर है और उधर के हिन्दू यद्यपि काले रंग के, परन्तु बहुत शुद्ध हैं। इस प्रान्त में हिन्दू ईसाई बहुत से हैं। यह ईसाई प्रायः रोमनकैथोलिक हैं। बहुधा चोटी भी रखते हैं और जाति को भी मानते हैं। अपनी जाति में ही खानपान और विवाह का व्यौहार करते हैं।

लगभग एक सप्ताह के बाद हम सीलोन पहुँचे और जब हम जहाज़ पर से उतरे तो उन लोगों ने, जो प्लेग के सन्देह के कारण यात्रियों को अलग रखते हैं; हमको पकड़ लिया और कोलँबो नगर में जाने से रोकने लगे। अंत में मैं कलक्टर साहब को प्लेग-संदिग्धों के स्थान पर छोड़ कर एक पारसी व्यापारी के पास पहुँचा, जिसके नाम मिस्टर मालाबारी ने मुझे चिट्ठी दी थी। उस पारसी ने एक आदमी को मेरे साथ किया। इस बीच कर्मचारियों ने भी डिप्टी कलक्टर साहब को छोड़ दिया था। मालूम होता था कि वह कुछ पैसा चाहते थे और जब हमसे प्राप्ति न हुई तब हमें तंग करना छोड़ दिया। अंत में पारसी व्यापारी का वह नौकर हमें एक होटल में छोड़ गया। मेरे जीवन में यह पहिला मौका था कि मैं एक होटल में ठहरा और योरोपियन ढङ्ग का खाना खाया। डिप्टी कलेक्टर साहब ने भी शोरबा और थोड़ी मछली खाना आरम्भ कर दिया था और कभी कभी मांस के कबाब भी चख लेते थे। किन्तु जब मांस इनके

सामने आता था तो इनकी तबीयत बहुत खराब हो जाती थी। लगभग एक सप्ताह हमने कोलम्बो की सैर की। उसके बाद हमने कांडी की सैर की। उसके बाद सीलोन के पहाड़ न्यूरालिया की सैर की, जिससे कुछ दूर पर वह स्थान बताया जाता है जहां रावण ने सीता को बन्द रखा था। इसके पास एक बहुत सुन्दर और साफ नदी बहती है। इसके पास ही सीलोन का सबसे बड़ा बाग है। यहाँ से उतर कर हम अनुरुद्धपुरा गये। यह एक दबा हुआ नगर था, जो अंग्रेजों के समय में खोदा गया है। और जिसके खोदने से पृथ्वी में से बौद्ध काल के आश्चर्यजनक बड़े बड़े भवन निकले हैं। इस नगर में वह वृक्ष है जो महाराज अशोक के पुत्र ने भारतवर्ष से लाकर यहाँ लगाया था और जिसको बौद्ध लोग पूजते हैं। मैं इन खण्डहरों में घण्टों फिरा करता था और पुराने भारतवर्ष की बड़ाई और कारीगरी पर आहें भरा करता था। लौटते समय हमने मदुरा के वृहत् मन्दिर की सैर की और रामेश्वरम् का तीर्थ भी किया और फिर हम मदरास पहुँचे। यहाँ हम तीन दिन एक मिस्टर श्री सुब्रह्मण्य के अतिथि रहे और मदरासी खाना खाते रहे और नगर की सैर करते रहे। लगभग तीन दिन हम मदरास ठहरे और फिर किनारे की रेल से कलकत्ते को रवाना होगये। कलकत्ता पहुँच कर मैं और मेरे साथी अलग हो गये। मैं

रायरलाराम साहब इन्जीनियर के मकान पर ठहरा और वह कहीं दूसरे स्थान पर जा ठहरे और एक दो दिन के बाद अपने प्रान्त को लौट आए।

यहाँ पर मैं मिस्टर गोखले से मिला और वह मुझे अपने साथ बड़ी व्यवस्थापिका सभा (Supreme Council) के अधिवेशन में ले गये, उस दिन उस बिल पर बहस थी जिसके द्वारा विश्वविद्यालय कानून की अनियमित कार्यवाहियों को नियमानुकूल बनाया गया था। व्यवस्थापिका सभा में उपस्थिति पूरी थी। हिंदुस्तानियों में एक ही वक्तृता चुटीली थी और वह गोखले की। अंग्रेजों में से श्री इबसन की वक्तृता सबसे बलवती कही जाती थी। अन्त में कानून पास होगया और मेरे दिल पर इस तमाशे का गहरा प्रभाव पड़ा। गोखले मुझे एक दिन निवेदिता बहिन के पास ले गये, जिन से मिलकर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। वह मुझे स्टेट्स्मैन के सम्पादक मिस्टर रैटक्लीफ के पास ले गईं और मार्ग में उन्होंने जो बातें मुझ से कीं वह मुझे कभी नहीं भूल सकतीं। इन को अंग्रेजी राज से घोर घृणा और हिंदुस्तानियों से बहुत प्रेम था। राजनीति में उनके वही सिद्धांत थे जो मैजिनी के थे। उन के मिलने से मेरे विचारों में बहुत ही दृढ़ता होगई और मुझे बहुत प्रसन्नता प्राप्त हुई। कलकत्ते से मैं सीधा लाहौर आ गया।

(१६)

विलायत यात्रा

थोड़े दिनों के बाद इंडियन एसोसियेशन ने मुझे विलायत जाने के लिए प्रतिनिधि चुना, और पंजाब में मेरे विलायत भेजे जाने के लिये चन्दा होने लगा। कोई तीन सहस्र या ३५०० रुपया चन्दा हुआ (या कदाचित् १५०० सौ रुपये) और मैंने विलायत जाने का संकल्प पक्का कर लिया। चन्दा देने वालों में स्वर्गीय लाला लालचन्द साहब भी थे और बहुत करके भक्त ईश्वरदास भी थे। लाहौर में मुझे विदा करने के लिए एक बड़े समारोह से सभा हुई और बहुत से लोग मुझे विदा करने के लिए स्टेशन पर आये, जिनमें लाला हंसराज और स्वर्गीय लाला लालचन्द भी थे। मुझे जिस दिन चलना था उसी दिन मिस्टर गोखले का एक तार आया जिस में उन्होंने मुझे सूचित किया कि सर विलियम वेडर्बर्न की सम्मति से उन्होंने विलायत का जाना कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया और जुलाई में जाने का विचार किया है। परन्तु मैंने इस तार पर अपना निश्चय स्थगित न किया क्योंकि मुझे योरोप जाने की बहुत इच्छा थी और डर था कि यदि मैंने अपना जाना स्थगित कर दिया तो कदाचित् फिर कभी मुझे विलायत जाने का

अवसर न मिले। इसके अतिरिक्त मैं जुलाई में जाने से घबड़ाता था। तात्पर्य यह कि मैं लाहौर से चल पड़ा। मेरे साथ लाहौर के लाला दीवानचन्द कपूर थे, जो अपने काम से विलायत जा रहे थे।

बंबई से एक दिन के लिये मैं पूना गया और वहाँ मिस्टर गोखले का अतिथि हुआ। गोखले ने मेरा बहुत सत्कार किया और उनकी बहिन ने भी। एक समय मैंने तिलक महाराज के यहाँ भोजन किया, उनकी धर्मपत्नी के दर्शन किये और उनसे खूब बातें कीं। गोखले स्वयं मुझे तिलक के घर पर छोड़ गये परन्तु स्वयं वहाँ नहीं ठहरे। उन दिनों भी गोखले और तिलक में मेल न था, किन्तु गोखले के हृदय में तिलक के लिए और तिलक के हृदय में गोखले के लिये बड़ा आदर था। कम से कम मेरे मनमें ऐसा ही भाव पैदा हुआ।

सबसे पहिले पोर्ट सईद में जहाज पर से उतरा और जब मैंने वहाँ हिन्दुस्तानियों की दुकानें देखीं तो मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। जी चाहता था कि खूब ज़ोर से उनसे गले मिलूं। हमारे जहाज़ में तीसरे दर्जे के यात्रियों में भी हिन्दुस्तानी थे। हैदराबादी सिंधी, मालटा स्पेन और क्यूबा आदि स्थानों को, व्यापार करने जारहे थे। यह लोग जहाज़ पर अपना भोजन अपने हाथ से बनाते थे। पोर्टसईद

से चलकर मैं मसीना और मसीना से नेपिल्स से रोम और रोम से मिलान पहुँचा। मिलान से चलकर दस जून को लंदन पहुँच गया।

*　　*　　*

श्याम जी कृष्णवर्मा

इन सब स्थानों में मैंने जो कुछ देखा उसका विवरण पंजाबी पत्र में छप चुका है और इस लिये उसको यहाँ पर ब्योरेवार लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार विलायत के भ्रमण का हाल भी और जो कुछ मैंने किया वह भी पंजाबी में छपचुका है, तथापि इतना मैं यहाँ उल्लेख आवश्यक समझता हूँ कि जून सन् १९०५ ई० में जब श्यामजी कृष्णवर्मा को मेरे लंदन में पहुँचने का समाचार मालूम हुआ तो वह स्वयं मेरे होटल में मुझसे मिलने आये और मुझे अपने इण्डिया हाउस (भारतीय गृह) में ठहरने के लिये लेगये। इण्डिया हाउस (भारतीय गृह) का उद्घाटन संस्कार भी मेरे सामने हुआ और इन दिनों में मुझे कई बार श्यामजी कृष्णवर्मा से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके राजनीतिक विचार बहुत कुछ मुझसे मिलते थे यद्यपि मुझे उनकी वह कठोरता पसन्द न थी जो वह कांग्रेस और कांग्रेस के नेताओं के प्रति प्रगट करते थे। वह मिस्टर गोखले को बहुत कड़े शब्दों में स्मरण करते थे;

और मुझे यह पसन्द न आता था। इनके द्वारा मेरा परिचय साम्यवादी नेता हाइन्डमैन से हुआ और एक दो आयरलैंड के नेताओं से भी परिचय हुआ। उन्हीं दिनों में मजदूर दल या साम्यवादी दल की एक कांग्रेस होवर्नहाल में हुई। दादा भाई नौरोजी इस संस्था के उपप्रधान थे। उनके कहने से मैं इस कांग्रेस में सम्मिलित हुआ और मैंने वहाँ एक व्याख्यान दिया। श्यामजी कृष्णवर्मा ने भी वहाँ व्याख्यान दिया। श्यामजी कृष्णवर्मा ने एक मासिक पत्रिका जारी कर रक्खी थी। जिसका नाम "इण्डियन सोशियालीजिस्ट" (भारतीय समाजशास्त्री) था, और जिस में वह कांग्रेस के अंग्रेज नेताओं को बहुत बुरा भला कहा करते थे। अतएव जब सर हैनरी काटन को यह मालूम हुआ कि हमने और श्याम जी ने एक ही मंच पर से होमरूल के पक्ष में व्याख्यान दिए तो वह बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रिटिश समिति के अधिवेशन में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि मेरे प्रतिनिधि रूप से आने के कारण मेरा ऐसा करना उचित नहीं। सरविलियम वैडर्बर्न ने इस समय भी मेरे पक्ष में वक्तृता दी और शेष सब सदस्यों ने भी ऐसा ही किया। मैंने यह कह दिया था कि मैंने कांग्रेस के प्रतिनिधि बनने के लिए अपनी स्वतंत्रता नहीं बेच दी और न मैंने कोई ऐसा व्याख्यान दिया जिस पर किसी कांग्रेसवाले को आपत्ति करने का

कोई कारण हो सकता है, परन्तु यदि कांग्रेस के प्रतिनिधि होने के यह अर्थ हैं कि मैं इस देश में स्वतंत्रता से अपने विचारों को प्रकट नहीं कर सकता तो मैं कांग्रेस का प्रतिनिधित्व त्यागने के लिये बिलकुल तैयार हूँ, परन्तु स्वतंत्रता खोने के लिये तैयार नहीं हूँ। अन्त में सर हेनरी काटन ने यह कहा कि उन्हें जो विवरण व्याख्यान का मिला था वह ठीक न था और बात टल गई। वयोवृद्ध दादाभाई भी इस अधिवेशन में सम्मिलित थे। वह उन दिनों टेम्स पार केनासिंगटन की ओर एक घर में रहा करते थे, जिस में उन्होंने एक कमरा ले रक्खा था। बहुत सा समय तो वह विचार सम्मति (Vote) प्राप्त करने में लगाते थे। जुलाई में मैंने मैनचेस्टर; लीडस, एडेन्बर्ग ग्लास्गो आदि नगरों की सैर की। कहीं कहीं व्याख्यान भी दिए। हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों का आतिथ्य स्वीकार किया। अगस्त में मैं लंडन लौट आया और फिर भारतीय गृह (इंडिया हाउस) में रहने लगा। भारतीय गृह (इंडिया हाउस) का प्रबन्ध बहुत बुरा था, क्योंकि श्याम जी कृष्णवर्मा इस घर के सजाने और उसके प्रबन्ध में धन व्यय करना नहीं चाहते थे। उन्होंने घर पर तो रुपया लगा दिया और कुछ मामूली सा सामान भी ले लिया था। किन्तु वह चाहते थे कि इसका शेष व्यय किराये से निकले। परन्तु आरम्भ में ऐसा होना

असम्भव था। कुछ समय तक तो मेरे और एक अहमदाबाद के बैरिस्टर मिस्टर देसाई के अतिरिक्त और कोई वहाँ न रहा। अतएव इस घर के सम्बन्ध में मेरी कुछ थोड़ी सी अनबन भी श्याम जी से होगई। वहाँ पर एक नवयुवक हिन्दुस्तानी मुसलमान रहता था, जिसको श्यामजी ने पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति देने का वचन दिया था, किन्तु उससे वह इतना काम लेते थे कि उसे पढ़ने के लिये समय न मिलता था। मैंने इस मुसलमान लड़के को अमरीका जाने के लिये सहायता देने का वचन दिया। जब श्यामजी को यह मालूम हुआ तो वह बहुत अप्रसन्न हुए और कहने लगे कि आप मेरी कार्रवाई में हस्तक्षेप करते हैं और मेरी संस्था को नष्ट करते हैं। अन्त में उलाहना के बाद बात टल गई और इस घटना का कोई प्रभाव मेरे और श्यामजी के सम्बन्ध पर नहीं पड़ा। परन्तु यह स्पष्ट होगया कि श्यामजी के साथ मिलकर काम करना असम्भव है। श्यामजी का स्वभाव राजाओं का सा है। वह किसी व्यक्ति को मतभेद का अधिकार नहीं दे सकते। वह अपने मत में न केवल दृढ़ हैं, किन्तु किसी दूसरे के मतको स्थान पाने की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं। उनको अपनी बुद्धिमानी पर इतना विश्वास है है कि वह अपने से भिन्न मत रखने वालों को एक दम खरी खोटी सुनाने लगते हैं। तात्पर्य यह कि वह पूर्ण रूप से

अपनी चलाने वाले हैं। इसके अतिरिक्त वह घोर कंजूस हैं। जिस की सहायता करते हैं उससे यह आशा करते हैं कि वह जन्म भर उसका दास बनकर रहे, बाबू बहुत कसकर काम लेने वाले हैं। उन में दूसरे के विचारों को समझने के लिये कुछ उदार होने की योग्यता ही नहीं। उनका स्वभाव ही भगवान् ने ऐसा बनाया है। १९०५ ई० के बाद जो घटनाएँ हुईं, उनसे यह प्रमाणित होगया कि मेरी यह सम्मति ठीक है किंतु मुझे उनकी देशभक्ति में कभी सन्देह नहीं हुआ। उनके राजनीतिक सिद्धान्त बहुत कुछ ठीक हैं और यह सच्चे हृदय से अपने देश का भला चाहते हैं, परन्तु रुपये से उनको इतना प्यार है और अहंकार तथा आत्म-श्लाघा उनमें इतनी अधिक है कि वह किसी के साथ मिल-कर कोई काम नहीं कर सकते और कोई उनके साथ सह-योग नहीं कर सकता। अतएव इसी का यह फल है कि आज तक इनकी किसी के साथ नहीं निभी। जितने लोगोंने इनके साथ मित्रता की उनके साथ कुछ समय के बाद इनकी अनबन होगई। इनकी कोई योजना सफलता की सीमा तक नहीं पहुँची, तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इनके प्रचार और उनके उद्योगों ने राष्ट्रीय दल के जन्म देने में और उसके दृढ़ करने में बड़ा भाग लिया। हरदयाल और सावरकर को इन का शिष्य कहना

इन दोनों महान् पुरुषों का अनादर करना होगा परन्तु इनके विचारों का प्रभाव उन पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ा।

इस बार विलायत में महाराजा साहब बड़ोदा से परिचय हुआ। महाराजा साहब सेसिल होटल में ठहरे हुए थे और उन्होंने एक न्योता किया था जिस में मुझको और श्यामजी को भी बुलाया था। हमारे अतिरिक्त कदाचित् एक ही हिन्दुस्तानी और बुलाया गया था। महाराजा साहब ने मुझे महारानी के सामने उपस्थित किया और फिर हमसे धीरे से कहा कि आप ठहरें जब सब लोग चले जायेंगे तो आप से बातें करूंगा अतएव जब अंग्रेज़ चले गये तो महाराजा साहब ने खूब जी खोलकर हमसे बातें कीं।

सितम्बर के आरम्भ में मैं दीवान अमरनाथ के पुत्र दीवान बद्रीनाथ साहब को साथ लेकर अमेरिका को चल दिया। दीवान बद्रीनाथ उन दिनों कैमब्रिज में पढ़ते थे और उनके विचार बहुत गरम थे। इनको अमेरिका की सैर की अभिलाषा थी और इस कारण से कि मैं जा रहा था वह भी मेरे साथ हो लिए। अमेरिका में इनके कारण मुझे बहुत कष्ट हुआ। क्योंकि मेरी जेबी पुस्तक खोजाने के कारण मैं बड़ी आर्थिक कठिनाई में पड़ गया। जहाँ तक मुझे स्मरण है मेरी अमेरिका की सैर का हाल भी छप चुका है इसलिए मैं इस सम्बन्ध में यहाँ चर्चा करना आवश्यक नहीं

समझता।

अक्तूबर के आरम्भ में मैं लौट कर लंदन पहुँच गया। मिस्टर गोखले आ चुके थे और विलयम बेडर्बर्न ने हमारे काम का प्रोग्राम बना रक्खा था। अस्तु। इस प्रोग्राम के अनुसार मैं तीन नवम्बर तक भिन्न भिन्न स्थानों में व्याख्यान देता रहा। कई स्थानों में मैं और मिस्टर गोखले दोनों एक ही समय में एक ही मंच पर होते थे। कई वार वह अलग् और मैं अलग्। इस वर्ष जो व्याख्यान उन्होंने दिए उनमें बहुत तीव्रता थी और वे पर्याप्त मात्रा में गर्म थे। जिन सभाओं में हमने व्याख्यान दिए उनमें से बहुत सी श्रमदिल (लेबर) के प्रबन्ध से हुई थीं। अन्त में तीन नवम्बर को मैं इंगलैण्ड से चल पड़ा और मार्सिल्स से उसी जहाज में सवार हुआ जिस में लार्ड मिण्टो हिन्दुस्तान के वायसराय पद का भार लेने के लिये जारहे थे। जब मैं लाहौर पहुँचा तो नगर निवासियों ने बड़े उत्साह और समारोह से मेरा स्वागत किया। बाबू जोगिन्द्रनाथ घोष ने मुझे अपने कन्धे पर उठा लिया। स्टेशन के भीतर लोगों की इतनी भीड़ थी कि भय था कि कुछ लोग पिस जावेंगे। बाहर भी ओ३म् ही ओ३म् दिखाई दिखाई देता था। लड़कों ने गाड़ी के घोड़े खोल दिये और मेरे घर तक मुझे इसी तरह ले गये। इसके बाद कईदिन तक नगर में मेरे आदर के लिये सभायें होती

रहीं और इण्डियन ऐसोसिएशन की ओर से और भिन्न भिन्न कालेजों के विद्यार्थियों की ओर से मुझे कई स्वागत पत्र दिये गये। गवर्नमैण्ट कालेज की ओर से भी एक अलग स्वागतपत्र दिया गया इत्यादि इत्यादि।

इस वर्ष आर्य्यसमाज का जो वार्षिकोत्सव हुआ, उसमें जब मैं व्याख्यान देने के लिए खड़ा हुआ तो इतनी भीड़ थी कि काम करने वालों को अधिवेशन समाप्त करना पड़ा और सायंकाल के लिए विशेष रीति से दयानन्द स्कूल के छात्रालय में व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया। इस व्याख्यान में अनुमान किया गया था कि कम से कम दस सहस्र मनुष्य सम्मिलित थे। लोगों ने बहुत प्रेम से मेरा स्वागत किया और दो घण्टे तक मैं बोलता रहा। यह व्याख्यान बाद में सन् १९०७ ई० में मेरे विरुद्ध काम में लाया गया। मैंने इस व्याख्यान के अन्त में यह कहा था कि मुझे अपनी जाति के आकाश से रक्त की वर्षा होते दिखाई पड़ती है। यद्यपि इस समय तो आकाश स्वच्छ है परन्तु उसमें रक्त की छोटी लहरें इस समय भी बहरही हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि सन् ११०५ में जातीय दलकी पीछे की कार्रवाई का किसी को विचार और अनुमान भी न था, परन्तु एक इतिहास का विद्यार्थी यह समझता था कि वायु का बहाव किस ओर है।

(१७)

नरमदल और गरमदल की पहली टक्कर

इस के कुछ दिन बाद बारीसाल से गरम समाचार आने लगे और बंगाल की गवर्नमेंट ने बारीसाल कांफ्रेंस में बिघ्न डालकर बीच में ही बन्द कर दिया और कई जाति सेवक पकड़ भी लिएगये। इस कार्रवाई के विरोध में अप्रसन्नता प्रकट करने के लिये सबसे पाहिली सभा लाहौर में की गई, और मैंने उसमें ब्याख्यान दिया। इसमें मैंने विचार प्रकट किए कि हमारी राजभक्ति क़ानूनी सीमा से सीमित है। हम क़ानून के लिये राजभक्त हैं, इससे अधिक राजभक्ति की हमसे आशा करना अनुचित है। मैंने यह भी कहा कि यदि गवर्नमेंट की कठोरता का फल बुरा हुआ तो उसके लिये हम उत्तरदाई नहीं हैं।

इसके बाद मैं सन् १९०५ ई० की जो कांग्रेस बनारस में हुई उसमें सम्मिलित हुआ। इस कांग्रेस ने वास्तव में जातीय दल की जड़ों को दृढ़ कर दिया और उसकी नींव पक्की करदी। बनारस निवासियों ने गोखले का बड़े समारोह से स्वागत किया। उस स्वागत में मैं भी मिस्टर गोखले की गाड़ी में था, लोगों में वहुत उत्साह था। वन्देमातरम् का नाद चारों ओर गूंज रहा था। हमारी गाड़ी के पिछले पैर

पर सुन्दरलाल स्वयंसेवक खड़ा था जो जयकारों से कानों को बहरा करने में लगा हुआ था। इस स्वागत को देखकर देश-भक्तों का हृदय प्रसन्न होता था और ऐसा मालूम पड़ता था कि अब हमारे कष्टों का अन्त होने को है, लोग हमारे साथ हैं। मिस्टर गोखले के सभापति के स्थान से भाषण के बाद जब सायंकाल विषय निर्वाचनी समिति का अधिवेशन हुआ तो पहले ही प्रस्ताव पर झगड़ा हो गया। इस प्रस्ताव में महाराज कुमार के (प्रिंस आफ वेल्स) जो बाद में पंचम जार्ज हुए, स्वागत करने की बात थी। मैंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। इस समय देश में अकाल पड़ रहा था और लोग भूखे मर रहे थे। इस के अतिरिक्त लार्ड कर्ज़न की कार्य्यवाहियों के विरुद्ध देश में बड़ा आंदोलन था। ऐसे समय में महाराज कुमार (प्रिंस आफ वेल्स) को बुलाना एक बड़ी चालाकी की कार्यवाही थी। तात्पर्य यह था कि लोगों का ध्यान खेल तमाशे में लगा दिया जाय, और राजनीतिक अशांति को दबा दिया जावे। बाल गंगाधर तिलक ने मेरा साथ दिया। बहुत देर तक बहस होती रही। काँग्रेस के सारे पुराने नेता हमारे विरुद्ध थे। कुछ बंगाली और कुछ पंजाबी हमारे साथ थे। अन्त में अधिक सम्मति से प्रस्ताव तो स्वीकृत हो गया किंतु हमने उसी समय सूचना देदी कि कांग्रेस के खुले अधिवेशन में हम इस

प्रस्ताव का विरोध करेंगे। इस पर पुराने नेता बहुत गर्म हुए और संयुक्त प्रान्त के नेताओं के हृदयों में भय छा गया।

इसी रात को कमिश्नर, सब से बड़े सैनिक अफ़सर पुलिस के कप्तान को समाचार भेज दिए गए और मुन्शी माधोलाल साहब प्रातः काल डिपटी कमिश्नर को पंडाल में ले आए। उनके हृदय में झगड़ा होने का भय हो गया और उन्होंने इस झगड़े के दायित्व से बचने के लिए उसी समय से तैयारियां शुरू कर दीं। हमको विद्रोही बदमाश कहना आरम्भ किया। रात भर और प्रातःकाल नगर में यह चर्चा रही। प्रातःकाल हम को कुछ सज्जनों ने कहा कि इस प्रांत में ऐसी कार्यवाही होने से हमारी नाक काट जायगी और दूसरों ने कहा कांग्रेस बन्द हो जायगी इत्यादि। किंतु हमने किसी की परवाह न की। अन्त में ग्यारह बजे कांग्रेस के अधिवेशन का समय निकट आगया। परन्तु गोखले साहब नहीं पहुंचे। समाचार मिला कि वे अभी तक सलाह कर रहे हैं। गोखले बहुत प्रसन्न थे। और कहते थे कि यदि काम करने वाले हों तो लोगों में उत्साह और गुणग्राहकता बहुत अधिक है। कभी कभी उनकी आंखों में पानी भर आता था। तात्पर्य यह कि विलक्षण दृश्य था। अन्तमें गोखले आये और कांग्रेस में न जाकर वह मुझे समझाने लगे। मैंने उनसे कहा कि हमारा विरोध सिद्धान्त का है। अन्त में जब मैंने किसी

प्रकार न माना तो उन्होंने मुझे व्यक्तिगत प्रार्थना की और कहा मेरे कहने से इस विरोध को छोड़दो। इस पर मैं हार गया और मैंने उनसे वचन किया कि हम इस प्रस्ताव के समय पंडाल से बाहर रहेंगे। आप इस बीच प्रस्ताव स्वीकृत करलें, किन्तु कार्यवाही में यह न लिखें कि सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। मैंने तिलक को भी मना किया परन्तु बंगाली नवयुवक जे० एन० एम० और एक और आर० राय० न माने। अन्त में उनको बलपूर्वक पकड़ रक्खा गया और स्वागत का प्रस्ताव स्वीकृत होगया।

कांग्रेस के अंतिम दिन मेरा व्याख्यान हुआ। मुझे अनुमति केवल पांच मिनट की थी किन्तु मैं लगभग २० मिनट तक बोलता रहा। सब उपस्थित जनता का हृदय मेरे साथ था।

कांग्रेस के मंच पर यह व्याख्यान अपने ढंग का पहला व्याख्यान था, जिसने जातीय दल की नींव डाली। लोग बराबर करतल ध्वनि करते थे और "बोले जाइए" "बोले जाइए" पुकारते थे। सभापति के दोनों और जो वयोवृद्ध नेता बैठे थे, विशेषकर बम्बई के प्रतिनिधि, उनके मुंह सफ़ेद हो गये और वह मारे डर के काँपने लगे। वह गोखले को कहते थे कि इस को बन्द करो और बिठाओ परन्तु गोखले कहते थे कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। अन्त

म मैंने स्वयं ही यह कह कर अपना व्याख्यान समाप्त कर दिया कि मैं सभापति की कृपा का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता। उसी सायंकाल रोमेशचन्द्र दत्त ने मिस्टर पालित के द्वारा मुझे यह संदेश भेजा कि मेरा व्याख्यान उस कांग्रेस अधिवेशन में सब से अच्छा व्याख्यान था और उन्होंने उसको बहुत पसन्द किया। इस व्याख्यान के समाप्त होते ही यह बात फैल गई कि गवर्नमेंट मुझ पर अभियोग चलाएगी और मुझे बनारस में ही पकड़ लिया जायेगा। अतएव बनारस से जब मैं अपनी लड़की से मिलने देहरादून गया तो वहां मुझे लाहौर से तार मिला जिसमें मेरा कुशल समाचार पूछा गया था। लाहौर में यह गप्प उड़ गई थी कि मुझे पकड़ लिया गया है और मेरे विरुद्ध अभियोग चलेगा। अस्तु! जब तक मैं लाहौर नहीं पहुंचा लोगों को मेरी ख़ैरियत का विश्वास नहीं हुआ।

सन् १६०६ ई० में सारे वर्ष देश में स्वदेशी बहिष्कार और स्वराज्य का बहुत आन्दोलन रहा। मैं भी कभी कभी व्याख्यान देता रहा और समाचार पत्रों में भी लेख लिखता रहा। पंजाबी मेरे हाथ में था। यद्यपि अथावले इसके सम्पादक थे, परन्तु अधिकतर दायित्व मेरे ऊपर था। मैं बहुधा अन्तिम प्रूफ़ पढ़ने के लिए बड़े सवेरे छापेख़ाने जाया करता था। जिस अंक के बारे में पंजाबी पर अभियोग

लगाया गया उसके प्रूफ मैंने नहीं पढ़े थे, नहीं तो मैं कभी उस लेख को उस ढंग से छपने न देता, परन्तु यह स्पष्ट था कि गवर्नमेंट पंजाबी से बहुत अप्रसन्न थी। हर सप्ताह यह ख़बर गरम रहती थी कि पत्र पर मुकद्दमा चलाया जायगा। अन्त में १६०६ ई० को गर्मी में पंजाबी पर मुकद्दमा आरम्भ कर दिया गया। लाला जसवंतराय और अथावले के नाम वारएट निकले और इनको जमानत पर छोड़ दिया गया।

परन्तु इस वर्ष की सब से अधिक स्मरणयोग्य घटना इस वर्ष की कांग्रेस है। इस कांग्रेस का कलकत्ते में होना निश्चय हुआ था। बंगालप्रांत का गरम दल तिलक को सभापति बनाना चाहता था। मध्यमदल बम्बई वालों के हाथ में था। मध्यमदल (Moderate Party) और गोखले भी इस प्रस्ताव के विरोधी थे। परन्तु बंगाल में जनता के मत का बल तिलक के पक्ष में था। अन्त में बम्बई वाले नेताओं की सम्मति से कांग्रेस का सभापतित्व दादाभाई के अर्पण किया गया और जब उनकी स्वीकृति का तार आ गया तब उसको स्वागत समिति में उपस्थित होने से पहिले प्रकाशित कर दिया गया। विचार यह था कि दादा भाई नौरोजी का भारतवासियों के हृदय में बहुत आदर होने से कोई उनका विरोध न करेगा, विशेष कर जब यह मालूम हो जायगा कि उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

अधिक सम्भावना है कि उनको भी यह लिखा गया था कि कांग्रेस को घोर विपत्ति से बचाने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। बंगाल के गरम दल में बहुत जोश फैला। इस समय अरविन्द घोष कलकत्ते में जातीय कालेज के आचार्य (प्रिन्सिपल) थे और अपने विचारों का प्रचार कर रहे थे। परन्तु अन्त में नवयुवक दल ने दादाभाई के सभापतित्व को स्वीकार कर लिया।

इस वर्ष पंजाब से भी एक बड़ी संख्या प्रतिनिधियों की गई थी। लाला शार्दीलाल साहेब बैरिस्टर भी गये थे। मेरे विचार में कदाचित् ६० या ७० (सम्भव है कि ८० हों) सज्जन सम्मिलित हुए ला० शार्दीलाल और मैं एक ही डेरे में ठहरे थे। बंगालियों के हृदय में मेरे लिए श्रद्धा थी और इस लिए वह मेरा बहुत आदर करते थे। उन्हीं दिनों लार्ड मिंटो ने एक व्याख्यान में सात्विक स्वदेशी का समर्थन और बहिष्कार का खण्डन किया था। कदाचित् कलकत्ते की कांग्रेस प्रदर्शिनी खोलने के समय यह व्याख्यान दिया गया था; और नवयुवकदल कांग्रेस के नेताओं पर बहुत अप्रसन्न था कि उन्होंने क्यों लार्ड मिन्टों को प्रदर्शिनी खोलने के लिए बुलाया। मैं जिस दिन कलकत्ते पहुँचा मुझे मालूम हुआ कि उस दिन बीडन स्क्वायर में एक सार्वजनिक सभा होगी, जिसमें लार्ड मिंटों के व्याख्यान का उत्तर दिया जायगा। जब मैंने सभा के

विज्ञापन देखे तो मालूम हुआ कि इस सभा के सभापति होने के लिए मेरा नाम प्रकाशित किया गया है। मुझे कोई सूचना न थी। मैं बहुत अप्रसन्न हुआ और मैं सी. आर. दास के घर पर, जहां पाल और तिलक थे, उनसे मिलने और अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए गया। मुझे मालूम हुआ कि यह कार्रवाई विपिन चन्द्रपाल की है। अस्तु। उन्होंने कहा मुझे सभा में प्रधान बनना होगा। मैंने भी इस समय उनकी स्थिति बिगाड़ना पसन्द न किया। सायंकाल को सभा बड़ी धूम धाम से हुई। उपस्थिति सहस्रों की थी, और कई घंटे सभा होती रही। गरम दल ने अपना तम्बू अलग बनाया था और वहां पर तिलक खापर्डे, विपिनचन्द्र-पाल और अरविंद घोष आदि के व्यख्यान हुआ करते थे। मैं भी एक दो बार उन सभाओं में गया किंतु मैंने कोई व्याख्यान नहीं दिया। इनके अतिरिक्त निजी सभाएं भी बहुत सी हुईं।

अस्तु मेरे सम्मान के लिये भी दो एक भोज गरम दल ने दिए, परन्तु मैंने सदा उनसे यह कहा कि सारा बल उत्साह प्रदर्शन में व्यय कर देना उचित न होगा। हमारे विरोधी बड़े बलवान हैं, हमको संभल कर और देखभाल कर पैर उठाना चाहिए, जिसमें हमारे आन्दोलन की हार न हो, और तुरन्त ही हमारा गला न घोंट दिया जाय। मेरा

विचार यह है कि बंगाल के गरम दल ने इन मध्यम श्रेणी के विचार वाले व्याख्यानों पर ध्यान न दिया। कांग्रेस में भी खूब गड़बड़ होती रही। फिरोज़शाह मेहता पर स्पष्ट रीति से आक्रमण किया गया, और कुछ कुछ गोखले पर। स्वदेशी के प्रस्ताव पर बहुत झगड़ा हुआ और दोनों ओर से बहुत ज़ोरदार व्याख्यान हुए। यहां तक कि पण्डित मदनमोहन मालवीय को भी धिक्कारा गया। मैंने देखा कि मत भेद केवल शाब्दिक है और इस पर आपस में लड़ पड़ना उचित नहीं, अतएव मैंने एक संशोधन उपस्थित कर दिया, जिस को गरम दल के नेताओं ने तो स्वीकार नहीं किया परन्तु वह बहुसम्मति से स्वीकृत हो गया। विपिनचन्द्रपाल और उन का दल उठ कर चला गया। मध्यमदल के नेता मुझ से प्रसन्न थे। उन्हों ने मुझ से यह स्पष्ट कहा कि हमने स्थिति बिगड़ने से बचा ली। इस अधिवेशन में भी एक वार मेरा झगड़ा बम्बई वालों से हो गया था, परंतु अंत में बात टल गई। इस में कुछ सन्देह नहीं कि यदि दादाभाई इस अधिवेशन के सभापति न होते और मैं हस्ताक्षेप न करता तो जो कुछ १९०७ ई० में सूरत में हुआ, वह कलकत्ता में हो जाता।

* * * * *

सन् १९०६ ई० के अंत में पंजाब में भी बहुत ज़ोर शोर था। इस समय पंजाब कौंसिल में कानून बनने के दो

प्रस्ताव उपस्थित थे, एक लायलपुर के नए निवास स्थान के सम्बन्ध में और दूसरा भूमि के अधिकार परिवर्तन के कानून में संशोधन के लिए। पहले के विरुद्ध सब लोग थे। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी इससे अप्रसन्न थे। दूसरे से केवल हिन्दू अप्रसन्न थे। मैंने इन दोनों के विरुद्ध "पंजाबी" में लेख लिखे। इसके अतिरिक्त "पंजाबी" पर अभियोग चल रहा था और लोग इस बात पर अत्यन्त प्रसन्न थे कि यद्यपि "पंजाबी" पत्र अभियोग में फंसा हुआ है तथापि उसके लेखों की गरमी और वीरता में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। सरकारी गुप्तचरों और देशभक्तों के शत्रुओं ने अथावले को कई बार उकसाया कि वह लेख का सारा दायित्व जसवंतराय पर डाल दे तो गवर्नमेंट उसको छोड़देगी परंतु उसने ऐसा करना अस्वीकार किया। अस्तु। जब हम कांग्रेस से लौटकर आए तो मुकद्दमा समाप्ति पर था। लाला जसवंतराय ने अपने लिखित बयान में सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया था, और यह स्वीकार कर लिया था कि उनकी स्वीकृति से यह समाचार छापा गया था। तात्पर्य यह कि इस समय पंजाब भर में बड़ा उत्साह था। पंजाबी के साथ मुसलमान जनता में भी सहानुभूति थी, क्योंकि जिस लेख के लिए पंजाबी पर अभियोग चलाया गया था वह एक मुसलमान सिपाही की असाधारण मृत्यु के सम्बन्ध में था।

और इस लेख की सचाई में पंजाब के निवासियों को कुछ भी सन्देह न था। अस्तु सन् १६०७ के पहिले दो महीनों में पंजाब में राजनीतिक आंदोलन अपने ज़ोरों पर था। लोग स्वयं सभाएं करते थे और गवर्नमेंट के विरुद्ध प्रस्ताव पास करते थे। मैं भी इन दिनों कई स्थानों पर गया और स्वदेशी और बहिष्कार तथा देशभक्ति पर व्याख्यान दिये।

इन दिनों मिस्टर गोखले उत्तरीय हिन्दुस्तान में भ्रमण कर रहे थे। उनका भिन्न भिन्न स्थानों में बड़े समारोह से स्वागत हो रहा था। सारे देश में नया जीवन आया हुआ मालूम देता था। देशभक्ति का ज़ोर था, इंडियन एसोसियेशन ने भी मेरे प्रस्ताव पर गोखले को बुलाया। मैं इन दिनों इंडियन एसोसियेशन का प्रधान था। अकस्मात् मिस्टर गोखले के लाहौर में पहुंचने का वही दिन था जिस दिन जिला मैजिस्ट्रेट ने पंजाबी के मुकद्दमे में अंतिम निर्णय सुनाया और लाला जसवंतराय को दो वर्ष सपरिश्रम क़ैद का दण्ड दिया, और मि० अथावले को छः मास का। गोखले के स्वागत के लिए बड़े समारोह से तैयारियां की गई थीं। दस बजे के लगभग लाला जसवंतराय और अथावले को निर्णय सुनाया गया। कचहरी के हाते में बहुत बड़ी भीड़ थी। लोग इनकी गाड़ी के साथ भागे और करतल ध्वनि

करते गये। कुछ स्थानों में उन पर फूल बरसाये गये। मैंने उसी समय सेशन जज की कचहरी में ज़मानत के लिये प्रार्थना पत्र दिया। जिसके स्वीकार होने पर मैं स्वयं उनके छूटने का आज्ञापत्र लेकर जेल में गया। इस बीच जन साधारण ने ज़िला मजिस्ट्रेट के बंगले को कुछ हानि पहुंचा दी और सारे सिविल स्टेशन में हल्ला मच गया। नवयुवकों ने कई फिरंगियों को मारा। कुछ की गाड़ियों पर कीचड़ फेंका। कुछ को गालियां दीं। तात्पर्य यह कि अंग्रेजों की आंखों में विद्रोह का सा दृश्य छा गया और नगर का वायु मंडल गरम हो गया। जब लाला जसवंतराय और अथावले जेल से छूटे, उस समय लोगों की बड़ी भीड़ जेल के बाहर थी। मैं भी वहीं था। वयोवृद्ध लाला ईश्वरदास भी वहीं थे। जब यह भीड़ ज़िला मजिस्ट्रेट के बंगले के सामने आई तो बहुत गुल गपाड़ा करने लगी। हमने इनको रोका। जब वह लारेंस बाग में पहुंचे तो इनको एक अंग्रेज एक फ़िटन में सवार मिलगया; जो सिविल मिलिटरी गज़ट समाचार पत्र का संवाददाता था। इस पत्र के विरुद्ध बहुत जोश था। इस लिए लोगों ने इस अंग्रेज पर आक्रमण किया। उस समय मैंने ज़ोर से कहा कि बड़ी लज्जा की बात है कि इतनी भीड़ एक व्यक्ति पर आक्रमण कर रही है, यदि यह कायरता नहीं तो क्या है? लड़कों ने मुझसे अप्रसन्नता प्रकट की और

यद्यपि उसको छोड़ दिया और जाने दिया, किन्तु मेरी ओर मुंह बनाते हुए और मुझे बुरा भला कहते हुए चले गये। मिस्टर गोखले लगभग चार बजे स्टेशन पर पहुंचे। लोगों की भीड़ थी परन्तु चारों ओर पञ्जाबी के मुकद्दमे की चर्चा थी। अन्त में जब गोखले को गाड़ी पर बिठाया तो इस समय उत्साह का सागर उमड़ आया और लोग भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनियां करने लगे। कोई वन्देमातरम् पुकारता था, कोई भारतमाता की जय और शत्रुओं की क्षय कहता था, इत्यादि इत्यादि। जब उन्होंने गोखले की गाड़ी के घोड़े खोल दिए तो मैं उतर पड़ा और कुछ दूर तक भीड़ के साथ पैदल गया। फिर थोड़ी दूर जाकर गोखले ने मुझे गाड़ी पर बैठने के लिये बाध्य किया। जलूस सारे नगर में घूमता हुआ जब अनारकली में पहुंचा तो वहां लोगों की संख्या का अनुमान नहीं हो सकता था। मालूम हुआ कि जसवंतराय और अथावले भी वहां खड़े हैं और बहुत सी भीड़ उनके पीछे हैं। अंत में लोगों ने ज़बरदस्ती उन दोनों को उठाकर गाड़ी में बिठा दिया, जिस पर मैं और गोखले सवार थे। गोखले ने सम्भवतः इसको पसन्द नहीं किया, किन्तु वह क्या करते ? जनता का उत्साह अत्यन्त बढ़ा हुआ था। तीन दिन गोखले लाहौर में रहे और सारे नगर में उत्साह रहा। लाहौर की एक सभा में उन्होंने कहा, "I place no limita-

tion on the ambition of my people. We want to be in our own Country, what others are in theirs. "मैं अपने देशवासियों की आकांक्षाओं की कोई सीमा नियत नहीं करता। हम लोग अपने देश में अपनी वैसी ही स्थिति रखना चाहते हैं जैसी औरों की उनके देशों में है"। एक सभा का सभापति मैं बना और मैंने महाराजा रणजीतसिंह का समय स्मरण दिलाया। उस समय रणजीतसिंह जी की दो पोतियां राजकुमारी सोफिया और राजकुमारी बैम्बा दिलीपसिंह सभा में बैठी थीं। वयोवृद्ध नेताओं ने तो इसको बहुत नापसंद किया परन्तु नवयुवक लट्टू होगये। गोखले के इस आगमन ने पंजाब में विद्यमान उत्साह पर ईंधन का काम किया और पंजाब में और भी अधिक उत्साह फैल गया।

सन् १९०६ ई० की कांग्रेस में मैंने अजीतसिंह को गरम दल की सभाओं में देखा। सन् १९०७ ई० के आरम्भ में उन्होंने सूफ़ी अम्बाप्रसाद की सम्मति से एक नई संस्था स्थापित की और उसका नाम भारत माता रक्खा। इस संस्था के अधिवेशनों में वह और दूसरे नवयुवक खुल्लम-खुल्ला गरम दलके सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध धुआँधार व्याख्यान दिया करते थे। उन दिनों अजीतसिंह एक दो बार मेरे पास आये और उन्होंने

मुझसे आर्थिक सहायता माँगी। परन्तु मैंने कुछ शरतें लगाईं जिनको उन्होंने पूर्ण नहीं किया। मिस्टर गोखले के आगमन ने अर्ज़ीतासिंह के काम को और भी बल दिया। बस्तियों के कानून के संबन्ध में और नहर के कर के सम्बन्ध में, जो उन्हीं दिनों बढ़ाया गया था, उन्हें ज़मींदारों में जाकर काम करने का अवसर मिला जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

ज़िमींदारों में आन्दोलन।

ज़िमींदार मेरे पास भी आने लगे। मैं उनको राय-बहादुर रामशरणदास और मुहम्मद शफी के पास जाने की सम्मति देता रहा। एक बार मैंने उनको वायसराय के नाम तार का मसौदा भी बनाकर दिया परन्तु मैंने लेखनी से सहायता करने और समाचार पत्रों में लिखने के अतिरिक्त नई बस्तियों के कानून के बारे में किसी प्रकारका आन्दोलन नहीं चलाया। फिर भी सर्वसाधारण जानते थे कि मेरी सहानुभूति उनके साथ है और मैं उनके लिये समाचार पत्रों द्वारा काम कर रहा हूँ। यद्यपि मैंने नई बस्तियों के कानूनके आन्दोलन में कोई सीधा भाग नहीं लिया, परन्तु मैंने स्वदेशी और देशभक्ति पर इस समय अम्बाला, अमृतसर, फीरोजपुर आदि कई स्थानों में व्याख्यान दिए और मेरी प्रेरणा से अम्बाला और फीरोज़पुर के वकीलों ने बेगार के सम्बन्ध में

में कुछ विज्ञापन छपा कर बांट।

इस अवसर पर आवश्यक मालूम होता है कि अजीतसिंह की चर्चा की जाय। अजीतसिंह सन् १८९७ और १८९८ ई० से पहिले जालंधर एंग्लो संस्कृत स्कूल में पढ़ा करते थे। स्वर्गीय लाला सुन्दरदास के प्रिय शिष्यों में थे। उनके भाई किशनसिंह भी उनके साथ थे और इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि पहिले पहिल इनके भीतर देश भक्ति का बीज लाला सुन्दरदासने डाला। किशनसिंह ने बहुत जल्दी स्कूल छोड़ दिया परन्तु अजीतसिंह ने इएट्रेंस पास किया। सन् ९७ ई० के अकालमें पहिले पहिल किशन-सिंह से मेरा साक्षात हुआ। किशनसिंह को एजेण्ट बनाकर नागपुर और जबलपुर की ओर भेजा गया और उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। अतएव अनाथों की एक टोली लेकर लाहौर आए तो उनको लाहौर के नये अनाथालय का अध्यक्ष बना दिया गया। उन दिनों अजीतसिंह दयानन्द कालेज में पढ़ा करतेथे और बहुत अपव्ययी थे। इसके थोड़े ही समय बाद उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया, और वह अनाथालय में अपने भाई के पास बहुधा आने लगे। मुझे अजीतसिंह कभी कभी अकस्मात् मिलते रहे, परन्तु मेरा उन से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था। हां, उनके भाई किशनसिंह से मेरा अच्छा परिचय था। मैं

उनको दोनों में से अच्छा समझता था। अजीतसिंह प्रायः सार्वजनिक वादविवाद में भाग लेते रहते थे, और कभी कभी समाचारपत्रों में भी लिखते थे। अंग्रेजोंको फारसी उर्दू और हिन्दी पढ़ाकर जीविका चलाते थे। मैंने इस शताब्दी के आरम्भ में अर्थात् सन् १६०४ ई० के लगभग अनाथालय से नियमित सम्बन्ध तोड़ दिया था और रायबहादुर बख़्शी सोहनलाल उसके मन्त्री नियत होगये थे।

सन् १६०६ ई० की कांग्रेस में मैंने अजीतसिंह को गरम दल की सभाओं में देखा। सन् १६०७ ई० के आरम्भ में उन्होंने सूफ़ी अम्बाप्रसाद की सम्मति से एक नई संस्था स्थापित की और उसका नाम "भारत माता" रक्खा। इस संस्था के अधिवेशनों में वह और दूसरे नवयुवक खुल्लम-खुल्ला गरम दल के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध धुआंधार व्याख्यान दिया करते थे। उन दिनों अजीतसिंह कुछ बार मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे आर्थिक सहायता मांगी। परन्तु मैंने कुछ शरतें लगाईं जिनको उन्होंने पूर्ण नहीं किया। मिस्टर गोखले के आगमन ने अजीतसिंह के काम को और भी बल दिया। नई बस्तिओं के कानून के सम्बन्ध में और नहर के कर के सम्बन्ध में, जो उन्हीं दिनों बढ़ाया गया था, उन्हें ज़मींदारों में जाकर काम करने का अवसर मिला जिसका परिणाम

यह हुआ कि उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

* * * *

जिमींदार मेरे पास भी आने लगे। मैं उनको रायबहादुर रामशरणदास और मुहम्मद शफी के पास जाने की सम्मति देता रहा। एक बार मैंने उनको वाइसराय के नाम तार का मसौदा भी बनाकर दिया परन्तु मैंने लेखिनी से सहायता करने और समाचार पत्रों में लिखने के अतिरिक्त नई बस्तियों के कानून के बारे में किसी प्रकार का आन्दोलन नहीं चलाया। फिर भी सर्व साधारण जानते थे कि मेरी सहानुभूति उनके साथ है और मैं उनके लिये समाचार पत्रों द्वारा काम कर रहा हूँ। यद्यपि मैंने नई बस्तियों के कानून के आन्दोलन में कोई सीधा भाग नहीं लिया, परन्तु मैंने स्वदेशी और देशभक्ति पर इस समय अम्बाला, अमृतसर, फीरोजपुर आदि कई स्थानों में व्याख्यान दिए और मेरी प्रेरणा से अम्बाला और फीरोजपुर के वकीलों ने बेगार के सम्बन्ध में कुछ विज्ञापन छपाकर बाँटे।

मुझे पंजाब के हरएक जिला नगर और गांव से लोग व्याख्यान देने के लिए बुलाते थे, किन्तु मैं टाल देता था। इसी बीच में अजीतसिंह बाहर जाने लगे और उनके व्याख्यानों में लोग सहस्रों की संख्या में आते थे और बहुत उत्साह प्रदर्शित करते थे। अजीतसिंह के अतिरिक्त लायल-

पुर की नई बस्ती में ज़मीदार के सम्पादक और चौधरी शहाबुद्दीन वकील बड़े उत्साह से काम करते थे। इनकी सभाओं में सहस्रों की संख्या में लोग आते थे। चौधरी शहाबुद्दीन ने, पंजाबी में एक कविता बना कर पढ़ी, जिसने लोगों पर बहुत प्रभाव डाला। अन्त में मार्च के अन्त में या अप्रेल के आरम्भ में लायलपुर से मुझे भी एक बुलावा आया। मैंने भी एक दो वकीलों को लिखा था कि सर्व साधारण की सहानुभूति और प्रेम प्राप्त करने का यह समय है। उन्होंने ज़मींदार एसोसिएशन की ओर से मुझे व्याख्यान देने के लिए बुलाया। मैंने एक दो सप्ताह टाल दिए। फिर शाहबुद्दीन वकील मेरे पास आए और उन्होंने स्वयं मुझसे वहां जाने की प्रार्थना की। उन्हीं दिनों लायलपुर में गाय, बैल आदि पशुओं का एक मेला होने वाला था, इस मेले के अवसर पर वह एक सभा नई बस्तियों के कानून के विरुद्ध करना चाहते थे। मैंने शहाबुद्दीन के आग्रह करने पर जाना स्वीकार किया।

अस्तु २० अप्रेल की रात को गाड़ी में मैं रायबहादुर सुखदयाल, बख़्शी टेकचन्द पंडित रामभजदत्त और पंजाबी पत्र के मालिक लाला जसवन्तराय के साथ लायलपुर को गया। प्रातःकाल हम लोग स्टेशन पर पहुंचे। लोगों की भीड़ जमा थी। लोगों ने लाला जसवन्तराय को और मुझको

एक गाड़ी में बैठाकर घोड़े खोल दिए और वन्देमातरम् की ध्वनि करते हुए हमको ले जाने लगे। कुछ पग चलकर मैं तो गाड़ी पर से कूद पड़ा, परन्तु लाला जसवन्तराय को उन्होंने उतरने नहीं दिया। अस्तु, हमारा दल रामचन्द्र मनचन्दा वकील के यहां ठहरा। और वहां हमने खाना खाया। वहां पर चौधरी शहाबुद्दीन वकील और ज़मीदार पत्र के सम्पादक सिराजुद्दीन और एक ज़िलेदार, जो गवर्मेण्ट की ओर था, हमसे मिलने आए। कुछ देर बातें होती रहीं। फिर हम सब इकट्ठे सभा के स्थान पर गये। जब वहां पहुंचे तो एक बड़ी भीड़ जमा थी और अजीतसिंह व्याख्यान दे रहे थे। अस्तु हमारे पहुंच जानेपर अजीतसिंह का व्याख्यान बन्द करके नियमानुकूल कार्यवाही आरम्भ की गई। एक पेनशन पाए हुए सैनिक अफ़सर को सभापति बनाया गया, जिसने बहुत अच्छी वक्तृता दी।

मैंने भी एक व्याख्यान दिया, जिसका सारांश यह था कि हिन्दुस्तान की भूमि हमारी और हमारे बाप दादा की है। उसे अंग्रेज़ हमसे छीन नहीं सकते। बांकेदयाल ने "पगड़ी सम्भालओ जट्टा" वाली प्रख्यात कविता पढ़ी, जिस ने लोगों में बहुत उत्साह उत्पन्न किया। एक स्यालकोट के मुसलमान मौलवी ने भी एक पंजाबी कविता पढ़ी। शहाबुद्दीन और रामभजदत्त ने भी व्याख्यान दिये। अंत में मैंने

उस प्रार्थना पत्र को पढ़कर सुनाया जो हम लाहौर से छपवा कर लाये थे। सभा में गवर्मेंएट की ओर से कानून के विरोधियों की आपत्तियों का छपा हुआ उत्तर बांटा गया और व्याख्यानदाताओं ने उसके उत्तर दिये। राय बहादुर हरीचन्द अपने लड़कों और भतीजों के साथ सभा में पधारे, और बहुत देर तक बैठे रहे। हमारा उस समय विचार था कि उनको अंग्रेजी अफसरों ने सभा की कार्यवाही देखने के लिये भेजा है। ज़िले के डिप्टी कमिश्नर और पुलिस सुपरेएटेएडेंट भी सभा की बाहरी पंक्ति में आकर खड़े हुए और कुछ देर तक कार्यवाही देखते रहे। परन्तु लोगों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और न उन्होंने कुछ हस्ताक्षेप किया। सिक्ख और मुसलमान जमींदारों में बहुत अधिक उत्साह था और यदि पुलिस इस सभा में हस्तक्षेप करती तो उपद्रव हो जाने का बहुत भय था।

सभा अभी समाप्त नहीं होने पाई थी, कि अजीतसिंह भी व्याख्यान देने के लिए खड़े हुए। कुछ लोगों का विचार था कि उनको अनुमति न दी जाय, परन्तु रामभजदत्त ने दरख़्वास्त पर आग्रह किया कि उनको बोलने की अनुमति दी जाय। उनका व्याख्यान विद्रोहजनक था, सभा के संचालकों ने कई बार उसे बन्द करने का विचार किया परन्तु रामभजदत्त ने उनको मना किया। अन्त में उन्होंने

उनको बन्द किया और सभापति ने उठकर यह कह दिया कि सभा समाप्त। परन्तु लोग अजीतसिंह को सुनते रहे और हम लोग उठकर सभा से चले आए। उसी रात को हम लाहौर को लौट आए। जो प्रार्थना पत्र (मेमोरियल) लायलपुर की सभा में पढ़कर स्वीकृत कराया गया उसका असली मसौदा शहाबुद्दीन ने तैयार किया था, जो बहुत सख़्त था। फिर माननीय मियाँ मुहम्मद शफी ने उसको ठीक किया और उसमें कुछ परिवर्तन किए। इसके बाद वह मेरे पास आया और मुझे उस समय भी वह आवश्यकता से अधिक सख़्त मालूम हुआ। अतएव मैंने उसको और भी नरम कर दिया।

इस (लायलपुर की) सभा से कुछ दिन पहिले अजीतसिंह ने रावलपिंडी में जाकर कुछ व्याख्यान दिए थे। उन सभाओं में से एक सभा के सभापति लाला गुरुदासराम साहनी बैरिस्टर थे, और विज्ञापन दाताओं में अमोलकराम वकील का नाम था। सभा में व्याख्यान देने वालों में लाला हंसराज वकील, पंडित जानकीनाथ कौल वैरिस्टर और खजानसिंह वैरिस्टर थे। सभा के बाद जिले के डिपटी कमिश्नर ने इन पांचों सज्जनों के नाम सूचना निकाली कि वह एक नियत तारीख को इस बात का उत्तर दें कि इस सभा में सम्मिलित होने के अपराध में क्यों इनको वकालत और वैरिस्टरी से

अलग न किया जाय ? इस सूचना ने पंजाब भर में धूम मचा दी, क्योंकि लाला हंसराज और लाला अमोलकराम पंजाब के प्रसिद्ध और लोकप्रिय नेताओं में गिने जाते थे। जो तारीख इस सूचना के उत्तर के लिये नियत की गई, उससे पहिले दिन मैं भी रावलपिंडी पहुंच गया। जिस समय मैं रावलपिंडी के स्टेशन पर पहुंचा, ला० गुरदासराम साहनी, जिनके साथ मुझे बहुत प्रेम था, स्टेशन पर उपस्थित थे। इनकी गाड़ी में बैठकर हम दोनों एक और बैरिस्टर के घर पर पहुंचे जहां एक छोटी सी सभा हो रही थी इस समय वहां पर रायबहादुर मैयादास साहनी लाला हंसराज साहनी के पुत्र बोधराज बैरिस्टर और लाला हंसराज साहनी, पंडित जानकीनाथ तथा कुछ और आदमी उपस्थित थे और अगले दिन की कार्रवाई के सम्बन्ध में सलाह कर रहे थे। वहां मुझे मालूम हुआ कि ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि कल पेशी के समय नगर में हड़ताल होगी और रेलवे के माल गोदाम और मंडी आदि में सब काम बंद कर दिया जायगा। मुझे यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई और मैंने केवल इतनी ही टिप्पणी की कि यदि हड़ताल का विचार है तो ऐसा न हो कि वह अपूर्ण रह जाय। जो काम किया जाय वह पूरा होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वहां यह भी निश्चय किया गया कि कचहरी की कार्रवाई में किस ढङ्ग

से बचाव किया जाय और लेखबद्ध उत्तर भी तैयार कर लिया गया। अगले दिन दस बजे हम कचहरी में पहुँचे तो देखा कि कचहरी का सारा हाता आदमियों से भरा हुआ है। यहां तक कि इधर उधर जाने को भी स्थान न था। डिप्टी कमिश्नर समय पर कचहरी न पहुंचे, जितनी देर उन के आने में होती थी उतनी ही आदमियों की भीड़ बढ़ती जाती थी। अनुमान किया जाता है कि उस दिन लगभग बीस सहस्र आदमी अथवा इससे अधिक कचहरी के हाते में उपस्थित थे। अन्त में डिप्टी कमिश्नर लगभग बारह बजे आए और उन्होंने आते ही मिस्टर अज़ीज़ अहमद बैरिस्टर को तथा अभियुक्तों को बुलाकर यह सूचना दी कि पञ्जाब गवर्नमेंट की आज्ञा से कार्रवाई स्थगित की गई। यह आज्ञा सर्व साधारण में बिजली के समान फैल गयी और लोग करतल ध्वनि करने लगे।

बहुत से लोग इकट्ठे होकर मेरे पास वकीलों के कमरे में आए और मुझ से कहने लगे कि मैं व्याख्यान दूं। मैंने व्याख्यान देना अस्वीकार किया फिर उन्होंने चाहा कि मैं उनके साथ जलूस बनाकर नगर को चलूं, परन्तु मैंने इसे भी अस्वीकार किया। कुछ ही क्षणों के बाद यह समाचार आया कि सर्वसाधारण डिप्टी कमिश्नर और ज़िला जज के बंगलों में घुस गए हैं और कुछ हानि पहुंचा रहे हैं। हमने

उसी समय आदमी दौड़ाये कि उनको हटाया जाय और किसी प्रकार का उपद्रव करने से रोका जाय, परन्तु ऐसा मालूम होता था कि पुलिस के कुछ आदमी भी इस भीड़ में थे, जो लोगों को उपद्रव करने के लिए उत्तेजित करते थे। कुछ आदमियों ने राह चलते अंग्रेज़ों को मारा। तात्पर्य यह कि विद्रोह का पूरा रूप तैयार होगया। थोड़ी देर में मालूम हुआ कि सर्वसाधारण बूटासिंह के कारख़ाने में घुस गए हैं। बूटासिंह को लोग देशद्रोही और उस सारे झगड़े का कर्ता धर्ता समझते थे।

लोगों के बाध्य करने पर मैंने यह स्वीकार कर लिया था कि सायंकाल मंडी के हाते में व्याख्यान दूंगा, परन्तु जब यह उपद्रव होगया तब मैंने व्याख्यान को स्थगित करने का विचार कर लिया। हम अभी कचहरी में ही थे कि हमें समाचार मिला कि सरकारीसेना बलवे का दमन करने और बलवा करने वालों को पकड़ने के लिए भेजी गई है। हमें यह भी मालूम हुआ कि पठानों की एक पलटन ने तैयार होने में कुछ देर लगाई। एक पठान मेरे पास आया और उसने मुझसे कहा कि अमुक पलटन आपकी आज्ञा चाहती है, किन्तु मैंने हँसकर बात टाल दी। मैंने इस व्यक्ति को पुलिस का भेदिया समझा था। अन्त में सेना ने बलवा बंद किया और बहुत आदमियों को पकड़कर हवालात में बन्द

कर दिया, जिसमें नगर के कुछ प्रसिद्ध आदमी थे और कुछ पढ़े लिखे नवयुवक थे। हमारे पास सब समाचार पहुँचते थे किन्तु हम क्या कर सकते थे? लाला हंसराज साहनी की तबियत अच्छी न थी। इस लिये वह अपने घर जाकर लेट गए। जब सभा का समय निकट आया तो हम लाला हंसराज के घर पर इकट्ठे हुए। वह सभा में जाना न चाहते परन्तु मैंने कहा कि इस समय सभा में न जाना बड़ी भारी कायरता है और इसके अतिरिक्त यह अच्छा अवसर है कि हम बलवे पर खेद प्रकट करते हुए लोगों को ठंडा करने का उद्योग करें। वहां पर हमको यह समाचार भी मिला कि डिप्टी कमिश्नर ऐगन्यू (Agnew) और पुलिस के कप्तान एक पुलिस का गारद लेकर सभा के रास्ते में बैठे हैं।

अस्तु हम इकट्ठे होकर चले। रास्ते में पुलिस का एक दूत मिला जिसने कहा कि ज़िले के मैजिस्ट्रेट साहब आप लोगों को बुलाते हैं। अतएव इस आज्ञानुसार हम उनके सामने उपस्थित हुए। वह एक कुरसी पर बैठे थे और पुलिस के कप्तान खड़े थे, और उनके इधर उधर पुलिस के देशी अफसरों की बड़ी भीड़ थी। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि मैं आज्ञा देता हूं कि यह सभा न की जाय, और कोई व्याख्यान न दिया जाय, और यदि मेरी आज्ञा के विरुद्ध सभा की जायगी तो उसका दायित्व आप लोगों पर है।

लाला हंसराज ने कहा कि हम आज्ञा का पालन करेंगे, हमें इस उपद्रव पर बड़ा खेद है। फिर पुलिस के कप्तान ने मेरी ओर संकेत करके कहा कि यदि सभा हुई तो आप व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे। मैंने उनसे कहा कि मुझे आप के उपदेश की आवश्यकता नहीं है, मैं कुछ कुछ कानून जानता हूं और अपने दायित्व को समझता हूं। इस पर ऐगन्यू (Agnew) साहब के बदन में आग लग गई और वह अप्रसन्न होकर कहने लगे कि "चले जाओ हम इस प्रकार की बातें सुनना नहीं चाहते"।

अस्तु, तात्पर्य यह कि हम वहां से लौट आए और हमने लोगों को, जो सभाके लिए जमा हुए थे कहला भेजा कि सभा को हाकिमों ने बन्द कर दिया है, इस लिए उचित है कि सब लोग अपने अपने घरोंको चले जायँ। उस रात को और कोई अधिक कार्रवाई नहीं हुई। अगले दिन खाना खाकर हम सब कचहरी गये। लाला हंसराज और लाला अमोलकराम कचहरी नहीं आए। थोड़ी देर वहां ठहर कर मैं लाला गुरुदासराम की कोठी पर, जहां मैं ठहरा हुआ था, लौट कर सोगया। लगभग तीन बजे मुझे समाचार मिला कि लाला गुरुदासराम को पुलिस ने पकड़ लिया है। मैं स्वयं कपड़े पहिनकर कचहरी गया, वहां मालूम हुआ कि लाला हंसराज साहनी, लाला अमोलकराम और लाला गुरुदास

राम पकड़े जा चुके हैं और पंडित जानकीनाथ तथा मलिक खज़ानसिंह की खोज हो रही है। पकड़ने के लिए गोरों की सेना नियत की गई थी। पकड़े हुए लोग कचहरी में लाए गए। वहां उन्होंने ज़मानत पर छुटने के लिये प्रार्थना की, जो अस्वीकृत हुई। अतएव मैं तत्काल ही स्टेशन को चला आया और उसी समय एक गाड़ी लाहौर को चलती थी उसमें सवार होगया, जिस से लाहौर पहुँचकर चीफ़कोर्ट में जमानत के लिये प्रार्थना पत्र दिलवा सकूं। रास्ते में मालूम हुआ कि इन लोगों के पकड़े जाने के समाचार सब स्थानों में फैल गए हैं।

अगले दिन जमानत के लिये प्रार्थना पत्र दिया गया। मामूली ढंग से एक जज जमानत के प्रार्थना पत्र सुन करके उन पर आज्ञा दे देता था, किन्तु इस मुकद्दमे में सरकारी वकील जमानत की प्रार्थना का विरोध करने के लिये उपस्थित था, अतएव जज ने आज्ञा दी कि यह प्रार्थना पत्र बैञ्च में उपस्थित हो और इस बीच में सरकारी वकील रावलपिंडी के जिला मजिस्ट्रेट का उत्तर प्राप्त करले कि जमानत न दी जाय। मुकद्दमा पेश होने से पहिले रावलपिंडी के मजिस्ट्रेट कचहरी में आये और वह रावलपिंडी के सेनापति की एक चिट्ठी चीफ़कोर्ट के जजों के नाम लाए जिसमें सम्भवतः यह लिखा हुआ था कि यदि इन लोगों को

जमानत पर छोड़ दिया गया तो देशीसेना में विद्रोह हो जाने का भय है। यह चिट्ठी अभियुक्तों के वकीलों को नहीं दिखाई गई। यद्यपि उन्होंने उसके देखने की और उसकी नक़ल प्राप्त करने की प्रार्थना की।

मामूली नियम के अनुसार बहस सुनने के पश्चात् यह आज्ञा दी गई कि अभियुक्त जमानत पर छोड़े नहीं जा सकते। उन्हीं दिनों मुझे कई लोगों द्वारा यह मालूम हुआ कि गवर्मैण्ट और पुलिस किसी न किसी प्रकार मुझे पकड़ने की चिन्ता में है। चीफ़कोर्ट के रजिस्ट्रार ने बोधराज बैरिस्टर से कहा कि असली व्यक्ति जो इस सब उपद्रव की जड़ है अभी तक स्वतंत्र है, हम उसकी चिन्ता में हैं और आशा करते हैं कि बहुत शीघ्र उसको वश में लाया जायगा। रावलपिंडी के उपद्रव और लायलपुर की सभा के बीच में लाला जसवन्तराय का मुकद्दमा चीफ़कोर्ट में हो चुका था। सैशन जज ने लाला जसवंतराय की कैद में कमी कर दी थी और दो वर्ष के स्थान पर उसे छः मास कर दिया था। उस दिन चीफ़कोर्ट ने जसवंतराय को जमानत पर छोड़ दिया था। दौरा जज की कचहरी में जो वक्तृता लाला जसवंतराय के वकील ने दी थी उस पर टिप्पणी करते हुए ट्रिब्यून पत्र ने, जो उस समय लाला हरकिशनलाल की प्रेरणा से एक ईसाई बैरिस्टर आलफ्रेड नंदी के हाथ में था,

यह लिखा था कि लाला जसवतराय लेख का सारा दायित्व सम्पादक पर डालते हैं। अतएव चीफ़ कोर्ट में जो वक्तृता जसवन्तराय की ओर से दी गई उसमें पहिले इस बात को स्पष्ट कर दिया गया कि लाला जसवंतराय लेख का पूरा दायित्व अपने ऊपर लेते हैं। जिस दिन इस मुकद्दमे में आज्ञा सुनाई गई उस दिन चीफ़कोर्ट के जजों के मुंह डर के मारे पीले थे। रीड साहब जज ने दो बार अरदली को कोठी पर मेम साहब का समाचार लाने के लिए भेजा। कोठी के हाते में बहुत अधिक पोलिस नियत थी और कचहरी से जेल तक भी सारे रास्ते में पुलिस को खड़ा किया गया था। जिस समय चीफ़जज ने आज्ञा सुनाई और पुलिस ने जसवन्तराय और अथावले को पकड़ा तो मैंने आगे बढ़ कर दोनों से हाथ मिलाए और जसवन्तराय ने मेरे पैरों पर हाथ लगाया।

कचहरी से जेल तक पहुँचने में बहुत कुछ मारपीट पुलिस में और साधारण जनता में हुई। लोगों ने पुलिस पर कीचड़ की बौछार की यहाँ तक कि अंग्रेज अफ़सर लोग अपनी गाड़ी से निकल कर लाला जसवन्तराय की गाड़ी में जा बैठे और पुलिस ने लोगों को बहुत मारा पीटा। इस उपद्रवका फल यह हुआ कि एक डी. ए. वी स्कूल का विद्यार्थी किशनसिंह और घसीटाराम जो आर्यसमाज के

देशनिर्वासन के समय
ला० लाजपतराय जी

उपदेशक रह चुके थे, पकड़ लिये गये। अतएव जब मुझे समाचार मिला तब मैं कोतवाली पहुँचा और मैंने किशनसिंह और डी. ए. वी. स्कूल के विद्यार्थी (यह विद्यार्थी बाद में छूट गया।) को साहस बँधाया। रावलपिंडी के वकीलों के पकड़े जाने के बाद लाला धनपतराय वकील ने मुझसे कहा कि इस अवसर पर आपस में एकता करके इन वकीलों की सहायता करनी चाहिये। अतएव वह मेल कराने के लिये मुझे हरकिशनलाल के बंगले पर ले गये और हम वहां दो तीन बार सलाह करने के लिये इकट्ठे हुए कि क्या किया जाय। जिस दिन से पंजाबी समाचार पत्र निकला था हरकिशनलाल मुझसे अप्रसन्न थे, और वह समझते थे कि मैं उनकी अपकीर्ति और बुराई करने पर तुला हुआ हूँ। अतएव ट्रिब्यून उनके सङ्केत से हम पर और आर्यसमाज पर आक्रमण किया करता था। उन दिनों मैं अपने बंगले पर अकेला था। प्लेग के कारण मेरी स्त्री और मेरे बाल-बच्चे सब गये हुए थे, केवल मेरे पिता लाहौर में थे और मेरे नौकर थे।

अस्तु ९ मई को मैं पकड़ कर देश से निर्वासित किया गया।

❋ प्रथम भाग समाप्त ❋

नवयुग ग्रंथमाला की अपूर्व पुस्तकें

(१) वीर मराठे—लेखक भीमसेन विद्यालंकार। भूमिका लेखक श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर पूना।

इलाहाबाद का प्रसिद्ध साप्ताहिक 'अभ्युदय' लिखता है

'पुस्तक (वीर मराठे) का विषय नाम ही से प्रकट है। पुस्तक सुन्दर भाषा में लिखी गई है। पढ़ने में उपन्यास का सा मज़ा आता है कहीं तो पढ़ते पढ़ते हृदय मराठों की वीरता देख बल्लियों उछल पड़ता है और कहीं राघोवा ऐसों का हाल पढ़ क्रोध और दुःख के भावों से आंसू निकल पड़ते हैं। हम चाहते हैं कि प्रत्येक हिन्दू एक वार पुस्तक पढ़े और अपने पूर्वजों से शिक्षा ले।

(२) आत्मकथा का द्वितीय भाग—इसमें लाला जी के देश निर्वासन तथा युरोप और अमरीका की यात्राओं के वर्णनोंके साथ २ लाला जी के राजनीतिक सामाजिक जीवन का सचित्र विवरण है। हर एक देशभक्त को इस का अध्ययन करना चाहिए।

(३) राष्ट्रधर्म—लेखक सत्यदेवजी विद्यालंकार भूतपूर्व सम्पादक स्वतंत्र दैनिक कलकत्ता। कीमत ८ आना।

(४) संगीत-सुधा—लेखक श्री० दयाशंकर भट्ट प्रधान अध्यापक वैदिक पुत्री पाठशाला लाहौर, मूल्य ।-)

मैनेजर—नवयुग ग्रन्थमाला नवयुग प्रैस, लाहौर।